।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २३ ।।

योग और प्याज, शामा की सर्पदंश से मुक्ति विषूचिका(हैजा) निवारणार्थ नियमों का उल्लंघन, गुरु भक्ति की कठिन परीक्षा।

प्रस्तावना

वस्तुतः मनुष्य त्रिगुणामय (तीन गुण अर्थात् सत्व-रज-तम) है तथा माया के प्रभाव से ही उसे ऐसा भासित होने लगता है कि मैं शरीर हूँ। दैहिक बुद्धि के आवरण के कारण ही वह ऐसी धारणा बना लेता है कि मैं ही कर्ता और उपभोग करने वाला हूँ और इस प्रकार वह अपने को अनेक कष्टों में स्वयं फँसा लेता है। फिर उसे उससे छुटकारे का कोई मार्ग नहीं सूझता। **मुक्ति का एकमात्र उपाय है-गुरु के श्री चरणों में अचल प्रेम और भक्ति।** सबसे महान् अभिनयकर्ता भगवान् साई ने भक्तों को पूर्ण आनन्द पहुँचाकर उन्हें निज-स्वरुप में परिवर्त्तित कर लिया है। उपर्युक्त कारणों से **हम साईबाबा को ईश्वर का ही अवतार मानते हैं।** परन्तु वे सदा यही कहा करते थे कि '' मैं तो ईश्वर का दास हूँ।'' अवतार होते हुए भी मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिए तथा अपने वर्ण के कर्त्तव्यों को किस प्रकार निभाना चाहिए, इसका उदाहरण उन्होंने लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। जो सब जड़ और चेतन पदार्थो में ईश्वर के दर्शन करता हो, उसको विनयशीलता ही उपर्युक्त थी। उन्होंने किसी की उपेक्षा या अनादर नहीं किया। वे सब प्राणियों में भगवद्दर्शन करते थे। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि '' मैं अनल हक्क(सोऽहम्) हूँ। '' वे सदा यही कहते थे कि''मैं तो यादे हक्क (दासोऽहम्) हूँ।'' **अल्ला मालिक'' सदा उनके होठोंपर था।** हम अन्य संतों से परिचित नहीं है और न हमें यही ज्ञात है कि वे किस प्रकार आचरण किया करते हैं अथवा उनकी दिनचर्या इत्यादि क्या है। ईश-कृपा से केवल हमें इतना ही ज्ञात है कि वे अज्ञान और बद्ध जीवों के निमित्त स्वयं अवतीर्ण होते हैं। **शुभ कर्मो के परिणामस्वरुप ही हममें सन्तों की कथाएँ और लीलाएँ श्रवण करने की इच्छा उत्पन्न होती है, अन्यथा नहीं।** अब हम मुख्य कथा पर आते हैं।

योग और प्याज

एक समय कोई एक योगाभ्यासी नानासाहेब चाँदोरकर के साथ शिरड़ी आया। उसने पातंजलि योगसूत्र तथा योगशास्त्र के अन्य ग्रन्थों का विशेष अध्ययन किया था, परन्तु वह व्यावहारिक अनुभव से वंचित था। मन एकाग्र न हो सकने के कारण वह थोड़े समय के लिए भी समाधि न लगा सकता था। यदि साईबाबा की कृपा प्राप्त हो जाए तो उनसे अधिक समय तक समाधि अवस्था प्राप्त करने की विधी ज्ञात हो जाएगी, इस विचार से वह शिरड़ी आया और जब मस्जिद में पहुँचा तो साईबाबा को प्याजसहित रोटी खाते देख उसे ऐसा विचार आया कि यह कच्ची प्याजसहित सुखी रोटी खाने वाला व्यक्ति मेरी कठिनाइयों को किस प्रकार हल कर सकेगा ? साईबाबा अन्तर्ज्ञान से उसका विचार जानकर तुरन्त नानासाहेब से बोले कि '' ओ नाना ! जिसमें प्याज हजम करने की शक्ति है, उसको ही उसे खाना चाहिए, अन्य को नहीं।'' इन शब्दों से अत्यन्त विस्मित होकर योगी ने साईचरणों में पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया। शुद्ध और निष्कपट भाव से अपनी कठिनाइयाँ बाबा के समक्ष प्रस्तुत करके उनसे उनका हल प्राप्त किया और इस प्रकार संतुष्ट और सुखी होकर बाबा के दर्शन और उदी लेकर वह शिरड़ी से चला गया।

शामा की सर्पदंश से मुक्ति

कथा प्रारंभ करने से पूर्व हेमाड़पंत लिखते हैं कि जीव की तुलना पालतू तोते से की जा सकती है, क्योंकि दोनों ही बद्ध हैं। एक शरीर में तो दूसरा पिंजड़े में। दोनों ही अपनी बद्धावस्था को श्रेयस्कर समझते हैं। परंतु यदि हरिकृपा से उन्हें कोई उत्तम गुरु मिल जाए और वह उनके ज्ञानचक्षु खोलकर उन्हें बंधन मुक्त कर दे तो उनके जीवन का स्तर उच्च हो जाता है, जिसकी तुलना में पूर्व संकीर्ण स्थिति सर्वथा तुच्छ ही थी।

गत अध्याय में किस प्रकार श्री. मिरीकर पर आने वाले संकट की पूर्वसूचना देकर उन्हें उससे बचाया गया, इसका वर्णन किया जा चुका है। पाठकवृन्द अब उसी प्रकार की और एक कथा श्रवण करें। एक बार शामा को विषधर सर्प ने उसके हाथ की उँगली में डस लिया। समस्त शरीर में विष का प्रसार हो जाने के कारण वे अत्यन्त कष्ट का अनुभव करके क्रंदन करने लगे कि अब मेरा अन्तकाल समीप आ गया है। उनके इष्ट मित्र उन्हें भगवान विठोबा के पास ले जाना चाहते थे, जहाँ इस प्रकार की समस्त पीड़ाओं की योग्य चिकित्सा होती है; परन्तु शामा मस्जिद की ओर ही दौड़ा-अपने विठोबा श्री साईबाबा के पास। जब बाबा ने उन्हें दूर से आते देखा तो वे झिड़कने और गाली देने लगे। वे क्रोधित होकर बोले-''अरे ओ नादान कृतघ्न बम्मन ! ऊपर मत चढ़। सावधान, यदि ऐसा किया तो ।'' और फिर गर्जना करते हुए बोले, '' हट, दूर हट, नीचे उतर।'' श्री साईबाबा को इस प्रकार अत्यंत क्रोधित देख शामा उलझन में पड़ गया और निराश होकर सोचने लगा कि केवल मस्जिद ही तो मेरा घर है और साईबाबा मात्र असहायोंके आश्रयदाता हैं और जब वे ही इस प्रकार मुझे यहाँ से भगा रहे हैं तो मैं अब किसकी शरण में जाऊँ? उसने अपने जीवन की आशा ही छोड़ दी और वहीं शान्तिपूर्वक बैठ गया। थोड़े समय के पश्चात् जब बाबा पूर्ववत शांत हुए तो शामा ऊपर आकर उनके समीप बैठ गया। तब बाबा बोले, '' डरो नहीं। तिल मात्र भी चिन्ता मत करो। दयालु फकीर तुम्हारी अवश्य रक्षा करेगा। घर जाकर शान्ति से बैठो और बाहर न निकलो। मुझपर विश्वास कर निर्भय होकर चिन्ता त्याग दो। '' उन्हें घर भिजवाने के पश्चात् ही पीछे से बाबा ने तात्या पाटील और काकासाहेब दीक्षित के द्वारा यह कहला भेजा कि वह इच्छानुसार भोजन करे; घरे में टहलते रहें; लेटें नहीं और न शयन करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि आदेशों का अक्षरक्षः पालन किया गया और थोड़े समय में ही वे पूर्ण स्वस्थ हो गए। इस विषय में केवल यही बात स्मरण योग्य है कि बाबा के शब्द (हट, दूर हट, नीचे उतर) शामा को लक्ष्य करके नहीं कहे गए थे, जैसा कि ऊपर से प्रतीत होता है, वरन् उस साँप और उसके विष के लिए ही यह आज्ञा थी (अर्थात् शामा के शरीर में विष न फैलाने की आज्ञा थी।) अन्य मंत्र शास्त्रों के विशेषज्ञों की तरह बाबा ने किसी मंत्र या मंत्रोक्त चावल या जल आदि का प्रयोग नहीं किया।

इस कथा और इसी प्रकार की अन्य कथाओं को सुनकर साईबाबा के चरणों में यह दृढ़ विश्वास हो जायगा कि यदि मायायुक्त संसार को पार करना हो तो केवल श्री साईचरणों का हृदय में ध्यान करो।

हैजा महामारी (विषूचिका)

एक बार शिरड़ी विषुचिका के प्रकोप से दहल उठी और ग्रामवासी भयभीत हो गए। उनका पारस्परिक सम्पर्क अन्य गाँव के लोगों से प्रायःसमाप्त सा हो गया। तब गाँव के पंचों ने एकत्रित होकर दो आदेश प्रसारित किए। प्रथम-लकड़ी की एक भी गाड़ी गाँव में न आने दी जाए। द्वितीय-कोई भी बकरे की बलि न दे। इन आदेशों का उल्लंघन करने वाले को मुखिया और पंचों द्वारा दंड दिया जाएगा। बाबा तो जानते ही थे कि यह सब केवल अंधविश्वास ही है और इसी कारण उन्होंने इन हैजा के आदेशों की कोई चिंता न की। जब ये आदेश लागू थे, तभी एक लकड़ी की गाड़ी गाँव में आई। सबको ज्ञात था कि गाँव में लकड़ी का अधिक अभाव है, फिर भी लोग उस गाड़ीवाले को भगाने लगे। यह समाचार कहीं बाबा के पास तक पहुँच गया। तब वे स्वयं वहाँ आए और गाड़ी वाले से गाड़ी मस्जिद में ले चलने को कहा। बाबा के विरुद्ध कोई चूँ-चपाट तक भी न कर सका। यथार्थ में उन्हें धूनी के लिए लकड़ियों की अत्यन्त आवश्यकता थी और इसीलिए उन्होंने वह गाड़ी मोल ले ली। एक महान् अग्निहोत्री की तरह उन्होंने जीवन भर धूनी को चैतन्य रखा। बाबा की धूनी दिनरात प्रज्वलित रहती थी और इसलिए वे लकड़ियाँ एकत्रित कर रखते थे।

बाबा का घर अर्थात् मस्जिद सबके लिए सदैव खुली थी। उसमें किसी ताले चाभी की आवश्यकता न थी। गाँव के गरीब आदमी अपने उपयोग के लिए उसमें से लकड़ियाँ निकाल भी ले जाया करते थे, परंतु बाबा ने इस पर कभी कोई आपत्ति न की। बाबा तो संपूर्ण विश्व को ईश्वर से ओतप्रोत देखते थे, इसलिए उनमें किसी के प्रति घृणा या शत्रुता की भावना न थी। पूर्ण विरक्त होते हुए भी उन्होंने एक साधारण गृहस्थ का-सा उदाहरण लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया।

गुरुभक्ति की कठिन परीक्षा

अब देखिए, दूसरे आदेश की भी बाबा ने क्या दुर्दशा की। वह आदेश लागू रहते समय कोई मस्जिद में एक बकरा बलि देने को लाया। वह अत्यन्त दुर्बल, बूढ़ा और मरने ही वाला था। उस समय मालेगाँव के फकीर पीरमोहम्मद उर्फ बड़े बाबा भी उनके समीप ही खड़े थे। बाबा ने उन्हें बकरा काटकर बलि चढ़ाने को कहा। श्री साईबाबा बड़े बाबा का अधिक आदर किया करते थे। इस कारण वे सदैव उनके दाहिनी ओर ही बैठाया करते थे। सबसे पहले वे ही चिलम पीते और फिर बाबा को देते, बाद में अन्य भक्तों को। जब दोपहर को भोजन परोस दिया जाता, तब बाबा बड़े बाबा को आदरपूर्वक बुलाकर अपने दाहिनी ओर बिठाते और तब सब भोजन करते। बाबा के पास जो दक्षिणा एकत्रित होती, उसमें से वे ५० रुपये प्रतिदिन बड़े बाबा को दे दिया करते थे। जब वे लौटते तो बाबा भी उनके साथ सौ कदम तक जाया करते थे। उनका इतना आदर होते हुए भी जब बाबा ने उनसे बकरा काटने को कहा तो उन्होंने अस्वीकार कर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि बलि चढ़ाना व्यर्थ ही है। तब बाबा ने शामा से बकरे की बलि के लिए कहा। वे राधाकृष्ण माई के घर जाकर एक चाकू ले आए और उसे बाबा के सामने रख दिया। राधाकृष्णमाई को जब कारण का पता चला तो उन्होंने चाकू वापस मँगवा लिया। अब शामा दूसरा चाकू लाने के लिए गए, किन्तु बड़ी देर तक मस्जिद में न लौटे। तब काकासाहेब दीक्षित की बारी आई। वह सोना सच्चा तो था, परन्तु उसको कसौटी पर कसना भी अत्यन्त आवश्यक था। बाबा ने उनसे चाकू लाकर बकरा काटने को कहा। वे साठेवाड़े से एक चाकू ले आए और बाबा की आज्ञा मिलते ही काटने को तैयार हो गए। उन्होंने पवित्र ब्राह्मण-वंश में जन्म लिया था और अपने जीवन में वे बलिकृत्य जानते ही न थे। यद्यपि हिंसा करना निंदनीय है, फिर भी वे बकरा काटने के लिए उद्यत हो गए। सब लोगों को आश्चर्य था कि बड़े बाबा एक यवन होते हुए भी बकरा काटने को सहमत नहीं हैं और यह एक सनातन ब्राह्मण बकरे की बलि देने की तैयारी कर रहा है। उन्होंने अपनी धोती ऊपर चढ़ा फेंटा कस लिया और चाकू लेकर हाथ ऊपर उठाकर बाबा की अन्तिम आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। बाबा बोले, ''अब विचार क्या कर रहे हो? ठीक है, मारो।'' जब उनका हाथ नीचे आने ही वाला था, तब बाबा बोले''ठहरो, तुम कितने दुष्ट हो? ब्राह्मण होकर तुम बकरे की बलि दे रहे हो?'' काकासाहेब चाकू नीचे रख कर बाबा से बोले '' आपकी आज्ञा ही हमारे लिए सब कुछ है, हमें अन्य आदेशों से क्या? हम तो केवल आपका ही सदैव स्मरण तथा ध्यान करते हैं और दिन रात आपकी आज्ञा का ही पालन किया करते हैं। हमें यह विचार करने की आवश्यकता नहीं कि बकरे को मारना उचित है या अनुचित? और न हम इसका कारण ही जानना चाहते हैं। हमारा कर्तव्य और धर्म तो निःसंकोच होकर गुरु की आज्ञा का पूर्णतः पालन करने में है।'' तब बाबा ने काकासाहेब से कहा कि '' मैं स्वयं ही बलि चढ़ाने का कार्य करुँगा।'' तब ऐसा निश्चित हुआ कि तकिये के पास जहाँ बहुत से फकीर बैठते हैं, वहाँ चलकर इसकी बलि देनी चाहिए। जब बकरा वहाँ ले जाया जा रहा था, तभी रास्ते में गिर कर वह मर गया।

भक्तों के प्रकार का वर्णन कर श्री. हेमाड़पंत यह अध्याय समाप्त करते हैं। भक्त तीन प्रकार के हैं-
(१) उत्तम
(२) मध्यम और
(३) साधारण।

प्रथम श्रेणी के भक्त वे हैं, जो अपने गुरु की इच्छा पहले से ही जानकर अपना कर्तव्य मान कर सेवा करते हैं। द्वितीय श्रेणी के भक्त वे हैं, जो गुरु की आज्ञा मिलते ही उसका तुरन्त पालन करते हैं। तृतीय श्रेणी के भक्त वे हैं, जो गुरु की आज्ञा टालते हुए पग-पग पर त्रुटि किया करते हैं। भक्तगण यदि अपनी जागृत बुद्धि और धैर्य धारण कर दृढ़ विश्वास स्थिर करें तो निःसन्देह उनका आध्यात्मिक ध्येय उनसे अधिक दूर नहीं है। श्वासोच्छ्वास का नियंत्रण, हठ योग या अन्य कठिन साधनाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। जब शिष्य में उपर्युक्त गुणों का विकास हो जाता है और जब अग्रिम उपदेशों के लिये भूमिका तैयार हो जाती है, तभी गुरु स्वयं प्रगट होकर उसे पूर्णता की ओर ले जाते हैं। अगले अध्याय में बाबा के मनोरंजक हास्य-विनोद के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २४ ।।

श्री बाबा का हास्य विनोद,
चने की लीला (हेमाड़पंत), सुदामा की कथा, अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई की कथा, बाबा कीं भक्त – परायणता।

प्रारम्भ

अगले अध्याय में अमुक-अमुक विषयों का वर्णन होगा, ऐसा कहना एक प्रकार का अहंकार ही है। जब तक अहंकार गुरुचरणों में अर्पित न कर दिया जाए, तब तक सत्यस्वरुप की प्राप्ति संभव नहीं। यदि हम निरभिमान हो जाएँ तो सफलता प्राप्त होना निश्चित ही है।

श्री साईबाबा की भक्ति करने से ऐहिक तथा आध्यात्मिक दोनों पदार्थो की प्राप्ति होती है और हम अपनी मूल प्रकृति में स्थिरता प्राप्त कर शांति और सुख के अधिकारी बन जाते हैं। अतः मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे आदरसहित श्री साईबाबा की लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करें। यदि वे इसी प्रकार प्रयन्त करते रहेंगे तो उन्हें अपने जीवन-ध्येय तथा परमानंद की सहज ही प्राप्ति हो जाएगी।

प्रायः सभी लोगों को हास्य प्रिय होता है, परन्तु हास्य का पात्र स्वयं कोई नही बनना चाहता । इस विषय में बाबा की पद्धति भी विचित्र थी। जब वह भावनापूर्ण होती तो अति मनोरंजक तथा शिक्षाप्रद होती थी। इसीलिए भक्तों को यदि स्वयं हास्य का पात्र बनना भी पड़ता था तो उन्हें उसमें कोई आपत्ति न होती थी। श्री. हेमाड़पंत भी ऐसा एक अपना ही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।,

चना लीला

शिरडी में बाजार प्रति रविवार को लगता है। निकटवर्ती ग्रामों से लोग आकर वहाँ रास्तों पर दूकानें लगाते और सौदा बेचते हैं। मध्याह्न के समय मस्जिद लोगों से ठसाठस भर जाया करती थी, परन्तु इतवार के दिन तो लोगों की इतनी अधिक भीड़ होती कि प्रायः दम ही घुटने लगता था। ऐसे ही एक रविवार के दिन श्री. हेमाड़पंत बाबा की चरण-सेवा कर रहे थे। शामा बाबा के बाईं ओर व वामनराव बाबा के दाहिनी ओर थे। इस अवसर पर श्रीमान् बूटीसाहेब और काकासाहेब दीक्षित भी वहाँ उपस्थित थे। तब शामा ने हँसकर अण्णासाहेब से कहा कि ''देखो, तुम्हारे कोट की बाँह पर कुछ चने लगे हुए-से प्रतीत होते हैं।'' -ऐसा कहकर शामा ने उनकी बाँह स्पर्श की, जहाँ कुछ चने के दाने मिले।

जब हेमाड़पंत ने अपनी बाईं कोहनी सीधी की तो चने के कुछ दाने लुढ़क कर नीचे भी गिर पड़े, जो उपस्थित लोगों ने बीन कर उठाए।

भक्तों को तो हास्य का विषय मिल गया और सभी आश्चर्यचकित होकर भाँति-भाँति के अनुमान लगाने लगे, परन्तु कोई भी यह न जान सका कि ये चने के दाने वहाँ आए कहाँ से और इतने समय तक उसमें कैसे रहे? इसका संतोषप्रद उत्तर किसी के पास न था, परन्तु इस रहस्य का भेद जानने को प्रत्येक उत्सुक था। तब बाबा कहने लगे कि ''इन महाशय-अण्णासाहेब को एकांत में खाने की बुरी आदत है। आज बाजार का दिन है और ये चने चबाते हुए ही यहाँ आए हैं। मैं तो इनकी आदतों से भली भाँति परिचित हूँ और ये चने हूँ और कथन की सत्यता के प्रमाण हैं। इसमें आश्चर्य की बात ही क्या हैं? हेमाड़पंत बोले कि '' बाबा, मुझे कभी भी एकांत में खाने की आदत नहीं है, फिर इस प्रकार मुझ पर दोषारोपण क्यों करते हैं? अभी तक मैंने शिरड़ी के बाजार के दर्शन भी नहीं किए तथा आज के दिन तो मैं भूल कर भी बाजार नहीं गया। फिर आप ही बताइए कि मैं ये चने भला कैसे खरीदता और

जब मैंने खरीदे ही नहीं, तब उनके खाने की बात तो दूर की ही है। भोजन के समय भी जो मेरे निकट होते है, उन्हें उनका उचित भाग दिए बिना मैं कभी ग्रहण नहीं करता ।''

बाबा-''तुम्हारा कथन सत्य है। परन्तु जब तुम्हारे समीप ही कोई न हो तो तुम या हम कर ही क्या सकते हैं? अच्छा, बताओ, क्या भोजन करने से पूर्व तुम्हें कभी मेरी स्मृति भी आती है? क्या मैं सदैव तुम्हारे साथ नहीं हूँ? फिर क्या तुम पहले मुझे ही अर्पण कर भोजन किया करते हो?''

शिक्षा

इस घटना द्वारा बाबा क्या शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, थोड़ा इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसका सारांश यह है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि द्वारा पदार्थों का रसास्वादन करने के पूर्व बाबा का स्मरण करना चाहिए। उनका स्मरण ही अर्पण की एक विधि है। इन्द्रियाँ विषय पदार्थों की चिन्ता किए बिना नहीं रह सकतीं। इन पदार्थों को उपभोग से पूर्व ईश्वरार्पण कर देने से उनकी आसक्ति स्वभावतः नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार समस्त इच्छाएँ, क्रोध और तृष्णा आदि कुप्रवृत्तियों को प्रथम ईश्वरार्पण कर गुरु की ओर मोड़ देना चाहिए। यदि इसका नित्याभ्यास किया जाए तो परमेश्वर तुम्हें कुवृत्तियों के दमन में सहायक होंगे। विषय के रसास्वादन उपस्थिति का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। तब विषय उपभोग के उपयुक्त है या नहीं, यह प्रश्न उपस्थित हो जाएगा और तब अनुचित विषय का त्याग करना ही पड़ेगा । इस प्रकार कुप्रवृत्तियाँ दूर हो जाएँगी और आचरण में सुधार होगा। इसके फलस्वरुप गुरुप्रेम में वृद्धि होकर शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होगी। जब इस प्रकार ज्ञान की वृद्धि होती है तो दैहिक बुद्धि नष्ट होकर चैतन्यघन में लीन हो जाती है। वस्तुतः गुरु और ईश्वर में कोई पृथकत्व नहीं है और जो उन्हें भिन्न समझता है, वह तो केवल अज्ञानी है तथा उसे ईश्वर-दर्शन होना भी दुर्लभ है। इसलिए समस्त भेदभाव को भूल कर, गुरु और ईश्वर को अभिन्न समझना चाहिए। इस प्रकार गुरु सेवा करने से ईश्वर-कृपा प्राप्त होना निश्चित ही है और तभी वे हमारा चित्त शुद्ध कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करेंगे। सारांश यह है कि ईश्वर और गुरु को पहले अर्पण किए बिना हमें किसी भी इन्द्रियग्राह्य विषय का रसास्वादन नहीं करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से भक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। फिर श्री साईबाबा की मनोहर सगुण मूर्त्ति सदैव आँखों के सम्मुख रहेगी, जिसके भक्ति, वैराग्य और मोक्ष की प्राप्ति शीघ्र हो जाएगी। ध्यान प्रगाढ़ होने से क्षुधा और संसार के अस्तित्व की विस्मृति हो जाएगी और सांसारिक विषयों का आकर्षण स्वतः नष्ट होकर चित्त को सुख और शांति प्राप्त होगी।

सुदामा की कथा

उपर्युक्त घटना का वर्णन करते-करते हेमाड़पंत को इसी प्रकार की सुदामा की कथा की याद आई, जो ऊपर वर्णित नियमों की पुष्टि करती है।

श्रीकृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम तथा अपने एक सहपाठी सुदामा के साथ सांदीपनि ऋषि के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन किया करते थे। एक बार कृष्ण और बलराम लकड़ियाँ लाने के लिए वन गए। सांदीपनि ऋषि की पत्नी ने सुदामा को भी उसी कार्य के निमित्त वन भेजा तथा तीनों विद्यार्थियों को खाने को कुछ चने भी उन्होंने सुदामा के द्वारा भेजे। जब कृष्ण और सुदामा की भेंट हुई तो कृष्ण ने कहा, ''दादा,मुझे थोड़ा जल दीजिए, प्यास अधिक लग रही है।'' सुदामा ने कहा, ''भूखे पेट जल पीना हानिकारक होता है, इसलिए पहले कुछ देर विश्राम कर लो।'' सुदाम ने चने के संबंध में न कोई चर्चा की और न कृष्ण को उनका भाग ही दिया। कृष्ण थके हुए तो थे ही; इसलिए सुदामा की गोद में अपना सिर रखते ही वे प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो गए। तभी सुदामा ने अवसर पाकर चने चबाना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में अचानक कृष्ण पूछ बैठे कि '' दादा, तुम क्या खा रहे हो और यह कड़कड़ की ध्वनि कैसी हो रही है?'' सुदामा ने उत्तर दिया कि'' यहाँ खाने को है की क्या ? मैं तो शीत से काँप रहा हूँ और इसलिए मेरे दाँत कड़कड़ बज रहे हैं। देखो तो, मैं अच्छी तरह से विष्णुसहस्त्रनाम भी उच्चारण नहीं कर पा रहा हूँ।'' यह सुनकर अन्तर्यामी कृष्ण ने कहा कि, ''दादा, मैंने अभी स्वप्न में देखा कि एक व्यक्ति दूसरे की वस्तुएँ खा रहा है। जब उससे इस विषय में प्रश्न किया गया तो उसने उत्तर दिया कि '' मैं खाक (धूल) खा रहा हूँ।'' तब प्रश्नकर्ता ने कहा, ''ऐसा ही हो''(एवमस्तु)। दादा, यह तो केवल स्वप्न था, **मुझे तो ज्ञात है कि तुम मेरे बिना अन्न का दाना भी ग्रहण नहीं करते,** परंतु श्रम के वशीभूत होकर मैंने तुम से ऐसा प्रश्न किया था।'' यदि सुदामा किंचित् मात्र भी कृष्ण की सर्वज्ञता से परिचित होते तो वे इस भाँति आचरण कभी न करते। अतः उन्हें इसका फल भोगना ही पड़ा। श्रीकृष्ण के लँगोटिया मित्र होते हुए भी सुदामा को अपना शेष जीवन दरिद्रता में व्यतीत करना पड़ा परन्तु

केवल एक ही मुट्ठी रुखे चावल(पोहा), जो उनकी स्त्री सुशीला ने अत्यन्त परिश्रम से उपर्जित किए थे, भेंट करने पर श्रीकृष्णजी बहुत प्रसन्न हो गए और उन्हें उसके बदले में सुवर्णनगरी प्रदान कर दी। जो दूसरों को दिए बिना एकांत में खाते हैं, उन्हें इस कथा को सदैव स्मरण रखना चाहिए।

श्रुति भी इस मत का प्रतिपादन करती है कि प्रथम ईश्वर को ही अर्पण करें तथा उच्छिष्ट हो जाने के उपरांत ही उसे ग्रहण करें। यही शिक्षा बाबा ने हास्य के रुप में दी है।

अण्णा चिंचणीकर और मौसीबाई

अब श्री. हेमाड़पंत एक दूसरी हास्यपूर्ण कथा का वर्णन करते हैं, जिसमें बाबा ने शान्ति-स्थापन का कार्य है। दामोदर घनश्याम बाबरे, उपनाम अण्णा चिंचणीकर बाबा के भक्त थे। वे सरल, सुदृढ़ और निर्भीक प्रकृति के व्यक्ति थे। वे निडरतापूर्वक स्पष्ट भाषण करते और व्यवहार में सदैव नगद नारायण-से थे। यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से वे रुखे और असहिष्णु प्रतीत होते थे, परन्तु अन्तःकरण से कपटहीन और व्यवहार-कुशल थे। इसी कारण उन्हें बाबा विशेष प्रेम करते थे। सभी भक्त अपनी-अपनी इच्छानुसार बाबा के अंग-अंग को दबा रहे थे। बाबा का हाथ कठड़े पर रखा हुआ था। दूसरी, ओर एक वृद्ध विधवा उनकी सेवा कर रही थीं, जिनका नाम वेणुबाई कौजलगी था। बाबा उन्हें 'माँ' शब्द से सम्बोधित करते तथा अन्य लोग उन्हें मौसीबाई कहते थे। वे एक शुद्ध हृदय की वृद्ध महिला थीं। वे उस समय दोनों हाथों की अँगुलियाँ मिलाकर बाबा के शरीर को मसल रही थीं। जब वे बलपूर्वक उनका पेट दबातीं तो पेट और पीठ का प्रायः एकीकरण हो जाता था। बाबा भी इस दबाव के कारण यहाँ-यहाँ सरक रहे थे। अण्णा दूसरी ओर सेवा में व्यस्त थे। मौसीबाई का सिर हाथों की परिचालन क्रिया के साथ नीचे-ऊपर हो रहा था। जब इस प्रकार दोनों सेवा में जुटे थे तो अनायास ही मौसीबाई का मुख अण्णा के अति निकट आ गया। मौसीबाई विनोदी प्रकृति की होने के कारण ताना देकर बोलीं कि ''यह अण्णा बहुत बुरा व्यक्ति है और यह मेरा चुम्बन करना चाहता है। इसके केश तो पक गए हैं, परन्तु मेरा चुंबन करने में इसे तनिक भी लज्जा नहीं आती है।'' यह सुनकर अण्णा क्रोधित होकर बोले,'' तुम कहती हो कि मैं एक वृद्ध और बुरा व्यक्ति हूँ। क्या मैं मुर्ख हूँ? तुम खुद ही छेड़खानी करके मुझसे झगड़ा कर रही हो? वहाँ उपस्थित सब लोग इस विवाद का आनन्द ले रहे थे। बाबा का स्नेह तो दोनों पर था, इसलिए उन्होंने कुशलतापूर्वक विवाद का निपटारा कर दिया। वे प्रेमपूर्वक बोले, **"**अरे अण्णा, व्यर्थ ही क्यों झगड़ रहे हो? मेरे समझ में नहीं आता कि माँ का चुम्बन करने में दोष ही क्या है?**"** बाबा के शब्दों को सुनकर दोनों शान्त हो गए और सब उपस्थित लोग जी भरकर ठहाका मारकर बाबा के विनोद का आनन्द लेने लगे।

बाबा की भक्त-परायणता

बाबा भक्तों को उनकी इच्छानुसार ही सेवा करने दिया करते थे और इस विषय में किसी प्रकार का हस्तक्षेप उन्हें सहन न था। एक अन्य अवसर पर मौसीबाई बाबा का पेट बलपूर्वक मसल रही थीं, जिसे देख कर दर्शकगण व्यग्र होकर मौसीबाई से कहने लगे कि ''माँ! कृपा कर धीरे-धीरे ही पेट दबाओ। इस प्रकार मसलने से तो बाबा की अंतड़ियाँ और नाड़ियाँ ही टूट जाएँगी।'' वे इतना कह भी न पाए थे कि बाबा अपने आसन से तुरन्त उठ बैठे और अंगारे के समान लाल आँखें कर क्रोधित हो गए। साहस किसे था, जो उन्हें रोके? उन्होंने दोनों हाथों से सटके का एक छोर पकड़ नाभि में लगाया और दूसरा छोर जमीन पर रख उसे पेट से धक्का देने लगे। सटका (सोटा) लगभग २ या ३ फुट लम्बा था। अब ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह पेट में छिद्र कर प्रवेश कर जाएगा। लोग शोकित एवं भयभीत हो उठे कि अब पेट फटने ही वाला है। बाबा अपने स्थान पर दृढ़ हो, उसके अत्यन्त समीप होते जा रहे थे और प्रतिक्षण पेट फटने की आशंका हो रही थी। सभी किं कर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। वे आश्चर्यचकित और भयभीत हो ऐसे खड़े थे, मानों गूँगों का समुदाय हो। यथार्थ में भक्तगण का संकेत मौसीबाई को केवल इतना ही था कि वे सहज रीति से सेवा-शुश्रूषा करें। किसी की इच्छा बाबा को कष्ट पहुँचाने की न थी। भक्तों ने तो यह कार्य केवल सद्भावना से प्रेरित होकर ही किया था। परन्तु बाबा तो अपने कार्य में किसी का हस्तक्षेप कणमात्र भी न होने देना चाहते थे। भक्तों को तो आश्चर्य हो रहा था कि शुभ भावना से प्रेरित कार्य दुर्गति में परिणत हो गया और वे केवल दर्शक बने रहने के अतिरिक्त कर ही क्या सकते थे? भाग्यवश बाबा का क्रोध शान्त हो गया और सटका छोड़कर वे पुनः आसन पर विराजमान हो गए। इस घटना से भक्तों ने शिक्षा ग्रहण की कि अब दूसरों के कार्य में कभी भी हस्तक्षेप न करेंगे और सबको उनकी इच्छानुसार ही बाबा की सेवा करने देंगे। केवल बाबा ही सेवा का मूल्य आँकने में समर्थ थे।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २५ ।।

(१) दामू अण्णा कासार - अहमदनगर के रुई और अनाज के सौदे (२) आम्र - लीला, प्रार्थना।

प्राक्कथन

जो अकारण ही सभी पर दया करते हैं तथा समस्त प्राणियों के जीवन व आश्रयदाता हैं, जो परब्रह्म के पूर्ण अवतार हैं, ऐसे अहेतुक दयासिन्धु और महान् योगिराज के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर अब हम यह अध्याय आरम्भ करते हैं।

श्री साई की जय हो! वे सन्त चूड़ामणि, समस्त शुभ कार्यों के उद्‌गम स्थान और हमारे आत्माराम तथा भक्तों के आश्रयदाता हैं। हम उन साईनाथ की चरण-वन्दना करते हैं, जिन्होंने अपने जीवन का अन्तिम ध्येय प्राप्त कर लिया है।

श्री साईबाबा अनिर्वचनीय प्रेमस्वरुप हैं। हमें तो केवल उनके चरणकमलों में दृढ़ भक्ति ही रखनी चाहिए। जब भक्त का विश्वास दृढ़ और भक्ति परिपक्व हो जाती है तो उसका मनोरथ भी शीघ्र ही सफल हो जाता है। जब हेमाड़पंत हो साईचरित्र तथा साई लीलाओं के रचने की तीव्र उत्कंठा हुई तो बाबा ने तुरन्त ही वह पूर्ण कर दी। जब उन्हें स्मृति-पत्र (Notes) इत्यादि रखने की आज्ञा हुई तो हेमाड़पंत में स्फूर्ति, बुद्धिमत्ता, शक्ति तथा कार्य करने की क्षमता स्वयं ही आ गई। वे कहते हैं कि मैं इस कार्य के सर्वदा अयोग्य होते हुए भी श्री साई के शुभाशीर्वाद से इस कठिन कार्य को पूर्ण करने में समर्थ हो सका । फलस्वरुप यह ग्रन्थ 'श्री साई सच्चरित्र' आप लोगों को उपलब्ध हो सका, जो एक निर्मल स्त्रोत या चन्द्रकान्तमणि के ही सदृश है, जिसमें से सदैव साई-लीलारुपी अमृत झरा करता है, ताकि पाठकगण जी भर कर उसका पान करें।

जब भक्त पूर्ण अन्तःकरण से श्री साईबाबा की भक्ति करने लगता है तो बाबा उसके समस्त कष्टों और दुर्भाग्यों को दूर कर स्वयं उसकी रक्षा करने लगते हैं। अहमदनगर के श्री. दामोदर साँवलाराम रासने कासार की निम्नलिखित कथा उपर्युक्त कथन की पुष्टि करती हैं।

दामू अण्णा

पाठकों को स्मरण होगा कि इन महाशय का प्रसंग छठवें अध्याय में शिरड़ी के रामनवमी उत्सव के प्रसंग में आ चुका है। ये लगभग सन् १८९७ में शिरड़ी पधारे थे, जब कि रामनवमी उत्सव का प्रारम्भ ही हुआ था और उसी समय से वे एक जरीदार बढ़िया ध्वज इस अवसर पर भेंट करते तथा वहाँ एकत्रित गरीब भिक्षुकों को भोजनादि कराया करते थे।

दामू अण्णा के सौदे

रुई का सैंदा

दामू अण्णा को बम्बई से उनके एक मित्र ने लिखा कि वह उनके साथ साझेदारी में रुई का सौदा करना चाहते हैं, जिसमें लगभग दो लाख रुपयों का लाभ होने की आशा है । सन् १९३६ में नरसिंह स्वामी को दिए गए एक वक्तव्य में दामू अण्णा ने बतलाया कि रुई के सौदे का यह प्रस्ताव बम्बई के एक दलाल ने उनसे किया था, जो कि साझेदारी से हाथ खींचकर मुझ पर ही सारा भार छोड़ने वाला था। (भक्तों के अनुभव भाग ११, पृष्ठ ७५ के अनुसार)। दलाल ने लिखा था कि धंधा अति उत्तम है और हानि की कोई आशंका नहीं। ऐसे स्वर्णिम अवसर को

हाथ से न खोना चाहिए। दामू अण्णा के मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, परन्तु स्वयं कोई निर्णय करने का साहस वे न कर सके। उन्होंने इस विषय में कुछ विचार तो अवश्य कर लिया, परन्तु बाबा के भक्त होने के कारण पूर्ण विवरण सहित एक पत्र शामा को लिख भेजा, जिसमें बाबा से परामर्श प्राप्त करने की प्रार्थना की। यह पत्र शामा को दूसरे ही दिन मिल गया, जिसे दोपहर के समय मस्जिद में जाकर उन्होंने बाबा के समक्ष रख दिया। शामा से बाबा ने पत्र के सम्बन्ध में पूँछताछ की। उत्तर में शामा ने कहा कि '' अहमदनगर के दामू अण्णा कासार आप से कुछ आज्ञा प्राप्त करने की प्रार्थना कर रहे हैं। '' बाबा ने पूछा कि '' वह इस पत्र में क्या लिख रहा है और उसने क्या येाजना बनाई है? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह आकाश को छूना चाहता है। उसे जो कुछ भी भगवत्कृपा से प्राप्त है, वह उससे सन्तुष्ट नहीं हैं। अच्छा, पत्र पढ़कर तो सुनाओ। '' शामा ने कहा,'' जो कुछ आपने अभी कहा, वही तो पत्र में भी लिखा हुआ है। हे देव ! आप यहाँ शान्त और स्थिर बैठे रहकर भी भक्तों को उद्विग्न कर देते हैं और जब वे अशान्त हो जाते हैं तो आप उन्हें आकर्षित कर, किसी को प्रत्यक्ष तो किसी को पत्रों द्वारा यहाँ खींच लेते हैं। जब आपको पत्र का आशय विदित ही है तो फिर मुझे पत्र पढ़ने को क्यों विविश कर रहे हैं?'' बाबा कहने लगे कि''शामा! तुम तो पत्र पढ़ो। मैं तो ऐसे ही अनापशनाप बकता हूँ। मुझ पर कौन विश्वास करता हैं?'' तब शामा ने पत्र पढ़ा और बाबा उसे ध्यापूर्वक सुनकर चिंतित हो कहने लगे कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सेठ (दामू अण्णा) पागल हो गया है। उसे लिख दो कि '' उसके घर किसी वस्तु का अभाव नहीं है। इसलिए उसे आधी रोटी में ही सन्तोष कर लाखों के चक्कर से दूर ही रहना चाहिए।'' शामा ने उत्तर लिखकर भेज दिया, जिसकी प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक दामू अण्णा कर रहे थे। पत्र पढ़ते ही लाखों रुपयों के लाभ होने की उनकी आशा पर पानी फिर गया। उन्हें उस समय ऐसा विचार आया कि बाबा से परामर्श कर उन्होंने भूल की है। परन्तु शामा ने पत्र में संकेत कर दिया था कि ''देखने और सुनने में फर्क हुआ करता हैं। इसलिए श्रेयस्कर तो यही होगा कि स्वयं शिरडी आकर बाबा की आज्ञा प्राप्त करो।'' बाबा से स्वयं अनुमति लेना उचित समझकर वे शिरड़ी आए। बाबा के दर्शन कर उन्होंने चरण सेवा की। परन्तु बाबा के सम्मुख सौदे वाली बात करने का साहस वे न कर सके। उन्होंने संकल्प किया कि यदि उन्होंने कृपा कर दी तो इस सौदे में से कुछ लाभांश उन्हें भी अर्पण कर दूँगा। यद्यपि यह विचार दामू अण्णा बड़ी गुप्त रीति से अपने मन में कर रहे थे तो भी त्रिकालदर्शी बाबा से क्या छिपा रह सकता था? बालक तो मिष्ठान्न मॉगता है, परन्तु उसकी माँ उसे कड़वी ही औषधि देती है, क्योंकि मिठाई स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है और इस कारण वह बालक के कल्याणार्थ उसे समझा-बुझाकर कड़वी औषधि पिला दिया करती है। बाबा एक दयालु माँ के समान थे। वे अपने भक्तों का वर्त्तमान और भविष्य जानते थे। इसलिए उन्होंने दामू अण्णा के मन की बात जानकर कहा कि ''बापू! मैं अपने को इन सांसारिक झंझटों में फँसाना नहीं चाहता।'' बाबा की अस्वीकृति जानकर दामू अण्णा ने यह विचार त्याग दिया।

अनाज का सौदा

तब उन्होंने अनाज, गेहूँ, चावल आदि अन्य वस्तुओं का धन्धा आरम्भ करने का विचार किया। बाबा ने इस विचार को भी समझ कर उनसे कहा कि तुम रुपये का ५ सेर खरीदोगे और ७ सेर को बेचोगे। इसलिए उन्हें इस धन्धे का भी विचार त्यागना पड़ा। कुछ समय तक तो अनाजों का भाव चढ़ता ही गया और ऐसा प्रतीत होने लगा कि संभव है, बाबा की भविष्यवाणी असत्य निकले। परन्तु दो-एक मास के पश्चात ही सब स्थानों में पर्याप्त वृष्टि हुई, जिसके फलस्वरुप भाव अचानक ही गिर गए और जिन लोगों ने अनज संग्रह कर लिया था, उन्हें यथेष्ठ हानि उठानी पड़ी। पर दामू अण्णा इस विपत्ति से बच गए। यह कहना व्यर्थ न होगा कि रुई का सौदा, जो कि उस दलाल ने अन्य व्यापारी की साझेदारी में किया था, उसमें उसे आधिक हानि हुई। बाबा ने उन्हें बड़ी विपत्तियों से बचा लिया है, यह देखकर दामू अण्णा का साईचरणों में विश्वास दृढ़ हो गया और वे जीवनपर्यन्त बाबा के सच्चे भक्त बने रहे।

आम्रलीला

एक बार गोवा के एक मामलतदार ने, जिनका नाम राले था, लगभग ३०० आमों का एक पार्सल शामा के नाम शिरड़ी भेजा। पार्सल खोलने पर प्रायः सभी आम अच्छे निकले। भक्तों में इनके वितरण का कार्य शामा को सौंपा गया। उनमें से बाबा ने चार आम दामू अण्णा के लिए पृथक् निकाल कर रख लिए। दामू अण्णा की तीन स्त्रियाँ थीं। परन्तु अपने दिए हुए वक्तव्य में उन्होंने बतलाया था कि उनकी केवल दो ही स्त्रियाँ थीं। वे सन्तानहीन थे, इस कारण उन्होंने अनेक ज्योतिषियों से इसका समाधान कराया और स्वयं भी ज्योतिष शास्त्र का थोड़ा सा अध्ययन कर ज्ञात कर लिया कि जन्म कुण्डली में एक पापग्रह के स्थित होने के कारण इस जीवन में उन्हें सन्तान का मुख देखने का कोई योग नहीं है। परन्तु बाबा के प्रति तो उनकी अटल श्रद्धा थी। पार्सल मिलने के दो घण्टे पश्चात् ही वे पूजनार्थ मस्जिद में आए। उन्हें देख कर बाबा कहने लगे कि लोग आमों के लिए चक्कर काट रहे हैं, परन्तु यो तो

दामू के हैं। जिसके हैं, उन्हीं को खाने और मरने दो। इन शब्दों को सुन दामू अण्णा के हृदय पर वज्राघात सा हुआ, परन्तु म्हालसापति (शिरड़ी के एक भक्त) ने उन्हें समझाया कि इस 'मृत्यु' शब्द का अर्थ अहंकार के विनाश से है और बाबा के चरणों की कृपा से तो वह आशीर्वादस्वरुप हैं, तब वे आम खानेको तैयार हो गए। इस पर बाबा ने कहा कि ''वे तुम न खाओ, उन्हें अपनी छोटी स्त्री को खाने दो। इन आमों के प्रभाव से उसे चार पुत्र और चार पुत्रियाँ उत्पन्न होंगी।'' यह आज्ञा शिरोधार्य कर उन्होंने वे आम ले जाकर अपनी छोटी स्त्री को दिए। धन्य है श्री साईबाबा की लीला, जिन्होंने भाग्य-विधान पलट कर उन्हें सन्तान-सुख दिया। बाबा की स्वेच्छा से दिये वचन सत्य हुए, ज्योतिषियों के नहीं।

बाबा के जीवन काल में उनके शब्दों लोगो में अधिक विश्वास और महिमा स्थापित की, परन्तु महान् आश्चर्य है कि उनके समाधिस्थ होने के उपरान्त भी उनका प्रभाव पूर्ववत् ही है। बाबा ने कहा कि '' **मुझ पर पूर्ण विश्वास रखो। यद्यपि मैं देहत्याग भी कर दूँगा, परन्तु फिर भी मेरी अस्थियाँ आशा और विश्वास का संचार करती रहेंगी। केवल मैं ही नहीं, मेरी समाधि भी वार्तालाप करेगी, चलेगी, फिरेगी और उन्हें आशा का सन्देश पहुँचाती रहेगी, जो अनन्य भाव से मेरे शरणागत होंगे। निराश न होना कि मैं तुमसे विदा हो जाऊँगा। तुम सदैव मेरी अस्थियों को भक्तों के कल्याणार्थ ही चिंतित पाओंगे। यदि मेरा निरन्तर स्मरण और मुझ पर दृढ़ विश्वास रखोगे तो तुम्हें अधिक लाभ होगा।''**

प्रार्थना

एक प्रार्थना कर हेमाड़पंत यह अध्याप समाप्त करते हैं।

'' हे साई सद्गुरु ! भक्तों के कल्पतरु ! हमारी आपसे प्रार्थना है कि आपके अभय चरणों की हमें कभी विस्मृति न हो। आपके श्री चरण कभी भी हमारी दृष्टि से ओझल न हों। हम इस जन्म-मृत्यु के चक्र से इस संसार में अधिक दुःखी हैं। अब दया कर इस चक्र से हमारा शीघ्र उद्धार कर दो। हमारी इंन्द्रियाँ, जो विषय-पदार्थों की ओर आकर्षित हो रही हैं, उनकी बाह्य प्रवृत्ति से रक्षा कर, उन्हें अंतर्मुखी बना कर हमें आत्म-दर्शन के योग्य बना दो। जब तक हमारी इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति और चंचल मन पर अंकुश नहीं है, तब तक आत्मसाक्षात्कार की हमें कोई आशा नहीं है। हमारे पुत्र और मित्र, कोई भी अन्त में हमारे काम न आएँगे। हे साई ! हमारे तो एकमात्र तुम्हीं हो, जो हमें मोक्ष और आनन्द प्रदान करोगे। हे प्रभु! हमारी तर्कवितर्क तथा अन्य कुप्रवृत्तियों को नष्ट कर दो। हमारी जिह्वा सदैव तुम्हारे नामस्मरण का स्वाद लेती रहे। हे साई! हमारे अच्छे बुरे सब प्रकार के विचारों को नष्ट कर दो। प्रभु! कुछ ऐसा कर दो कि जिससे हमें अपने शरीर और गृह में आसक्ति न रहे। हमारा अहंकार सर्वथा निर्मूल हो जाए और हमें एकमात्र तुम्हारे ही नाम की स्मृति बनी रहे तथा शेष सबका विस्मरण हो जाए। हमारें मन की अशान्ति को दूर कर, उसे स्थिर और शान्त करो। हे साई ! यदि तुम हमारे हाथ अपने हाथ में ले लोगे तो अज्ञानस्वरुपी रात्रि का आवरण शीघ्र दूर हो जाएगा और हम तुम्हारे ज्ञान-प्रकाश में सुखपूर्वक विचरण करने लगेंगे। यह तो तुम्हारा लीलामृत पान करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ तथा जिसने हमें अखण्ड निद्रा से जागृत कर दिया है, यह तुम्हारी ही कृपा और हमारे गत जन्मों के शुभ कर्मो का ही फल है।''

विशेषः- इस सम्बन्ध में श्री. दामू अण्णा के उपयुक्त कथन को उद्धृत किया जाता है, जो ध्यान देने योग्य है-''एक समय जब मैं अन्य लोगोंसहित बाबा के श्रीचरणों के समीप बैठा था तो मेरे मन में दो प्रश्न उठे। उन्होंने उनका उत्तर इस प्रकार दिया-(१) जो जनसमुदाय श्रीसाई के दर्शनार्थ शिरड़ी आता है, क्या उन सभी को लाभ पहुँचता है? इसका उन्होंने उत्तर दिया कि ''बौर लगे आम वृक्ष की ओर देखो। यदि सभी बौर फल बन जाए तो आमों की गणना भी न हो सकेगी। परन्तु क्या ऐसा होता है? बहुत-से बौर झर कर गिर जाते हैं। कुछ फले और बढ़े भी तो आँधी के झकोरों से गिरकर नष्ट हो जाते हैं और उनमें से कुछ थोड़े ही शेष रह जाते हैं।'' (२) दूसरा प्रश्न मेरे स्वयं के विषय में था। यदि बाबा ने निर्वाण- ले लिया तो मैं बिलकुल ही निराश्रित हो जाऊँगा, तब मेरा क्या होगा? इसका बाबा ने उत्तर दिया कि ''**जब और जहाँ भी तुम मेरा स्मरण करोगे, मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा।**'' इन वचनों को उन्होंने सन् १९१८ के पूर्व भी निभाया है और सन् १९१८ के पश्चात् आज भी निभा रहे हैं। वे अभी भी मेरे ही साथ रहकर मेरा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। यह घटना लगभग सन् १९१०-११ की है। उसी समय मेरा भाई मुझसे पृथक् हुआ और मेरी बहन की मृत्यु हो गई। मेरे घर में चोरी हुई और पुलिस जाँच-पड़ताल कर रही थी। इन्हीं सब घटनाओं ने मुझे पागल-सा बना दिया था।''

'' मेरी बहन का स्वर्गवास होने के कारण मेरे दुःख का पारावार न रहा और जब मैं बाबा की शरण गया तो उन्होंने अपने मधुर उपदेशों से मुझे सान्त्वना देकर अप्पा कुलकर्णी के घर पूरणपोली खिलाई तथा मेरे मस्तक पर चन्दन लगाया।''

'' जब मेरे घर चोरी हुई और मेरे ही एक तीसवर्षीय मित्र ने मेरी स्त्री के गहनों का सन्दूक, जिसमें मंगलसूत्र और नथ आदि थे, चुरा लिए, तब मैंने बाबा के चित्र के समक्ष रुदन किया और उसके दूसरे ही दिन वह व्यक्ति स्वयं गहनों का सन्दूक मुझे लौटाकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा।''

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २६ ।।

(१) भक्त पन्त (२) हरिश्चंद्र पितले और (३) गोपाल आंबड़ेकर की कथाएँ ।

इस सृष्टि में स्थूल, सूक्ष्म, चेतन और जड़ आदि जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब एक ब्रह्म है और इसी एक अद्वितीय वस्तु ब्रह्म को ही हम भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते तथा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं। जिस प्रकार अँधेरे में पड़ी हुई एक रस्सी या हार को हम भ्रमवश सर्प समझ लेते हैं; उसी प्रकार हम समस्त पदार्थों के केवल बाह्य स्वरुप को ही देखते हैं, न कि उनके सत्य स्वरुप को। एकमात्र सद्‌गुरु ही हमारी दृष्टि से माया का आवरण दूर कर हमें वस्तुओं के सत्यस्वरुप का यथार्थ में दर्शन करा देने में समर्थ हैं। इसलिए आआ, हम श्री सद्‌गुरु साईमहाराज की उपासना कर उनसे सत्य का दर्शन कराने की प्रार्थना करें, जो कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

आन्तरिक पूजन

श्री. हेमाड़पंत उपासना की एक सर्वथा नवीन पद्धति बताते हैं। वे कहते हैं कि सद्‌गुरु के पादप्रक्षालन के निमित्त आनन्द-अश्रु के उष्ण जल का प्रयोग करो। उन्हें सत्यप्रेमरुपी चन्दन का लेप कर, दृढ़विश्वासरुपी वस्त्र पहनाओ तथा अष्ट सात्विक भावों के स्थान पर कोमल और एकाग्र चित्तरुपी फल उन्हें अर्पित करा। भावरुपी बुक्का उनके श्री मस्तक पर लगा, भक्ति की कछनी बाँध, अपना मस्तक उनके चरणों पर रखो। इस प्रकार श्री साई को समस्त आभूषणों से विभूषित कर, उन्हें अपना सर्वस्व निछावर कर दो। उष्णता दूर करने के लिये भाव की सदा चँवर डुलाओ। इस प्रकार आनन्ददायक पूजन कर उनसे प्रार्थना करो-

'' हे प्रभु साई! हमारी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी बना दो। सत्य और असत्य का विवेक दो तथा सांसारिक पदार्थों से आसक्ति दूर कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करो। हम अपनी काया और प्राण आपके श्री चरणों में अर्पित करते हैं। हे प्रभु साई! मेरे नेत्रों को तुम अपने नेत्र बना लो, ताकि हमें सुख और दुःख का अनुभव ही न हो। हे साई! मेरे शरीर और मन को तुम अपनी इच्छानुकूल चलने दो तथा मेरे चंचल मन को अपने चरणों की शीतल छाया में विश्राम करने दो।''

अब हम इस अध्याय की कथाओं की ओर आते हैं।

भक्त पन्त

एक समय एक भक्त, जिनका नाम पंत था और जो एक अन्य सद्‌गुरु के शिष्य थे, उन्हें शिरड़ी पधारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी शिरड़ी आने की इच्छा तो न थी, परन्तु ''मेरे मन कछु और है, विधिता के कुछ और'' वाली कहावत चरितार्थ हुई। वे रेल(पश्चिम रेल्वे) द्वारा यात्रा कर रहे थे, जहाँ उनके बहुत से मित्र व सम्बन्धियों से अचानक ही भेंट हो गई, जो कि शिरड़ी यात्रा को ही जा रहे थे। उन लोगों ने उनसे शिरड़ी तक साथ-साथ चलने का प्रस्ताव किया। पंत यह प्रस्ताव अस्वीकार न कर सके। तब वे सब लोग बम्बई में उतरे और इसी बीच पन्त विरार में उतर अपने सद्‌गुरु से शिरड़ी प्रस्थान करने की अनुमति ले कर तथा आवश्यक खर्च आदि का प्रबन्ध कर, सब लोगों के साथ रवाना हो गए। वे प्रातःकाल वहाँ पहुँच गए और लगभग ११ बजे मस्जिद को गए। वहाँ पूजनार्थ भक्तों का एकत्रित समुदाय देख सब को अति प्रसन्नता हुई, परन्तु पन्त को अचानक ही मूर्च्छा आ गई और वे बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। तब सब लोग भयभीत होकर उन्हें स्वस्थ करने के समस्त उपचार करने लगे। बाबा की कृपा से और मस्तक पर जल के छींटे देने से वे स्वस्थ हो गए और ऐसे उठ बैठे, जैसे कि कोई नींद से जगा हो। त्रिकालज्ञ बाबा ने यह सब जानकर कि यह अन्य गुरु का शिष्य है, उन्हें अभय-दान देकर उनके गुरु में ही उनके विश्वास को दृढ़ करते हुए कहा कि '' कैसा भी आओ, परन्तु भूलो नहीं, अपने ही स्तंभ को दृढ़तापूर्वक पकड़कर

सदैव स्थिर हो उनसे अभिन्नता प्राप्त करो।'' पन्त तुरन्त इन शब्दों का आशय समझ गए और उन्हें उसी समय अपने सद्‌गुरु की स्मृति हो आई। उन्हें बाबा के इस अनुग्रह की जीवन भर स्मृति बनी रही।

श्री. हरिश्चन्द्र पितले

बम्बई में एक श्री. हरिश्चन्द्र नामक सद्‌गृहस्थ थे। उनका पुत्र मिर्गी रोग से पीड़ित था। उन्होंने अनेक प्रकार की देशी व विदेशी चिकित्साएँ कराईं, परन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ। अब केवल यही उपाय शेष रह गया था कि किसी सन्त के चरण-कमलों की शरण ली जाए। १५ वें अध्याय में बतलाया जा चुका है कि श्री. दासगणू के सुमधुर कीर्तन से श्री साईबाबा की कीर्ति बम्बई में अधिक फैल चुकी थी। पितले ने भी सन् १९१० में उनका कीर्तन सुना और उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री साईबाबा के केवल कर-स्पर्श तथा दृष्टिमात्र से ही असाध्य रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। तब उनके मन में भी श्री साईबाबा के प्रिय दर्शन की तीव्र इच्छा जागृत हुई। यात्रा का प्रबन्ध कर भेंट देने को फलों की टोकरी लेकर स्त्री और बच्चों सहित वे शिरड़ी पधारे। मस्जिद पहुँचकर उन्होंने चरण-वंदना की तथा अपने रोगी पुत्र को उनके श्री-चरणों में डाल दिया। बाबा की दृष्टि उस पर पड़ते ही उसमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया। बच्चे ने आँखे फेर दीं और बेसुध हो कर गिर पड़ा उसके मुँह से झाग निकलने लगी तथा शरीर पसीने से भींग गया और ऐसी आशंका होने लगी कि अब उसके प्राण निकलने ही वाले हैं। यह देखकर उसके माता-पिता अत्यंत निराश होकर घबड़ाने लगे। बच्चे को बहुधा थोड़ी मूर्च्छा तो अवश्य आ जाया करती थीं, परन्तु यह मूर्च्छा दीर्घ काल तक रही। माता की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और वह दुःखग्रसित हो आर्तनाद करने लगी कि मैं ऐसी स्थिति में हूँ, जैसे कि एक व्यक्ति, चोरों के डर से भाग कर किसी घर में प्रविष्ट हो जाए और वह घर ही उसके ऊपर गिर पड़े; या एक भक्त मन्दिर में पूजन के लिए जाए और वह मन्दिर ही उसके ऊपर गिर पड़े या एक गाय शेर के डर से भागकर किसी कसाई के हाथ लग जाए; या एक स्त्री सूर्य के ताप से व्यथित होकर वृक्ष की छाया में जाए और वह वृक्ष ही उसके ऊपर गिर पड़े। तब बाबा ने सान्त्वना देते हुए कहा कि '' इस प्रकार प्रलाप न कर, धैर्य धारण करो। बच्चे को अपने निवास्थान पर ले जाओ। वह आधा घण्टे के पश्चात् ही होश में आ जाएगा।'' तब उन्होंने बाबा के आदेश का तुरन्त पालन किया। बाबा के वचन सत्य निकले। जैसे ही उसे वाड़े में लाए कि बच्चा स्वस्थ हो गया और पितले परिवार-पति, पत्नी व अन्य सब लोगों को महान् हर्ष हुआ और उनका सन्देह दूर हो गया। श्री. पितले अपनी धर्मपत्नी सहित बाबा के दर्शनों को आए और अति विनम्र होकर आदरपूर्वक चरण-वन्दना कर पादसेवन करने लगे। मन ही मन वे बाबा को धन्यवाद दे रहे थे। तब बाबा ने मुस्कराकर कहा कि '' क्या तुम्हारे समस्त विचार और शंकायें मिट गईं? जिन्हें विश्वास और धैर्य है, उनकी रक्षा श्री हरि अवश्य करेंगे।'' श्री. पितले एक धनाढ्य व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने अधिक मात्रा में मिठाई बाँटी और उत्तम फल तथा पान बीड़े बाबा को भेंट किए। श्रीमती पितले सात्विक वृत्ति की महिला थीं। वे एक स्थान पर बैठकर बाबा की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहारा करती थीं। उनकी आँखों से प्रसन्नता के आँसू गिरते थे। उनका मृदु और सरल स्वभाव देखकर बाबा अति प्रसन्न हुए। ईश्वर के समान ही सन्त भी भक्तों के अधीन हैं। जो उनकी शरण में जाकर उनका अनन्य भाव से पूजन करते हैं, उनकी रक्षा सन्त करते हैं। शिरड़ी में कुछ दिन सुखपूर्वक व्यतीत कर पितले परिवार बाबा के समीप मस्जिद में गया और चरण-वन्दना कर शिरड़ी से प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने उन्हें उदी देकर आशीर्वाद दिया। पितले को पास बुलाकर वे कहने लगे''बापू! पहले मैंने तुम्हें दो रुपये दिए थे और अब मैं तुम्हें तीन रुपये देता हूँ। इन्हें अपने पूजन में रखकर नित्य इनका पूजन करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।'' श्री. पितले ने उन्हें प्रसादस्वरुप ग्रहण कर, बाबा को पुनः साष्टांग नमस्कार किया तथा आशीष के लिए प्रार्थना की। उन्हें एक विचार भी आया कि प्रथम अवसर होने के कारण मैं इसका अर्थ समझने में असमर्थ हूँ कि दो रुपये मुझे पहले कब दिए थे?

वे इस बात का स्पष्टीकरण चाहते थे, परन्तु बाबा मौन ही रहे। बम्बई पहुँचने पर उन्होंने अपनी वृध्द माता को शिरड़ी की विस्तृत वार्त्ता सुनाई और उन दो रुपयों की समस्या भी उनसे कही। उनकी माता को भी पहले-पहल तो कुछ समझ में न आया, परन्तु पुरी तरह विचार करने पर उन्हें एक पुरातन घटना की स्मृति हो आई, जिसने यह समस्या हल कर दी। उनकी वृद्ध माता कहने लगीं कि '' जिस प्रकार तुम अपने पुत्र को लेकर श्री साईबाबा के दर्शनार्थ गए थे, ठीक उसी प्रकार तुम्हें लेकर तुम्हारे पिता अनेक वर्षों पहले अक्कलकोटकर महाराज के दर्शनार्थ गए थे। महाराज पूर्ण सिद्ध, योगी, त्रिकालज्ञ और बड़े उदार थे। तुम्हारे पिता परम भक्त थे। इस कारण उनकी पूजा स्वीकार हुई। तब महाराज ने उन्हें पूजनार्थ दो रुपये दिए थे, जिनकी उन्होंने जीवनपर्यन्त पूजा की। उनके पश्चात् उनकी पूजा यथाविधि न हो सकी और वे रुपये खो गये। कुछ दिनों के उपरान्त उनकी पूर्ण विस्मृति भी हो गई। तुम्हारा सौभाग्य है, जो श्री अक्कलकोटकर महाराज ने साईस्वरुप में तुम्हें अपने कर्तव्यों और पूजन की स्मृति

कराकर आपत्तियों से मुक्त कर दिया है। अब भविष्य में जागरुक रहकर समस्त शंकाएँ और सोच विचार छोड़कर अपने पूर्वजों को स्मरण कर रिवाजों का अनुकरण कर, उत्तम प्रकार का आचरण अपनाओ। अपने कुलदेव तथा इन रुपयों की पूजा कर उनके यथार्थ स्वरुप को समझो और सन्तों का आशीर्वाद ग्रहण करने में गर्व मानो। श्री साई समर्थ ने दया कर तुम्हारे हृदय में भक्ति का बीजारोपण कर दिया है और अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उसकी वृद्धि करो।'' माता के मधुर वचनामृत का पान कर श्री. पितले को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्हें बाबा की सर्वकालज्ञता विदित हो गई और उनके श्री दर्शन का भी महत्व ज्ञात हो गया। इसके पश्चात् वे अपने व्यवहार में अधिक सावधान हो गए।

श्री. आम्बड़ेकर

पूने के श्री. गोपाल नारायण आम्बडेकर बाबा के परम भक्तों में से एक थे, जो ठाणे जिला और जव्हार स्टेट के आबकारी विभाग में दस वर्षो से कार्य करते थे। वहाँ से सेवानिवृत्त होने पर उन्होंने अन्य नौकरी ढूँढी, परन्तु वे सफल न हुए। तब उन्हें दुर्भाग्य ने चारों ओर से घेर लिया, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सात वर्ष व्यतीत किए। वे प्रति वर्ष शिरड़ी जाते और अपनी दुःखदायी कथा वार्त्ता बाबा को सुनाया करते थे। सन् १९१६ में तो उनकी स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। तब उन्होंने शिरड़ी जाकर आत्महत्या करने की ठानी। इसलिए वे अपनी पत्नी को साथ लेकर शिरड़ी आये और वहाँ दो मास तक ठहरे। एक रात्रि को दीक्षितवाड़े के सामने एक बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे उन्होंने कुएँ में गिर कर प्राणान्त करने का और साथ ही बाबा ने उनकी रक्षा करने का निश्चय किया। वहीं समीप ही एक भोजनालय के मालिक श्री. सगुण मेरु नायक ठीक उसी समय बाहर आकर उनसे इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगे कि '' क्या आपने कभी श्री अक्कलकोट महाराज की जीवनी पढ़ी है?'' सगुण से पुस्तक लेकर उन्होंने पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते वे एक ऐसी कथा पर पहुँचे, जो इस प्रकार थी- श्री अक्कलकोटकर महाराज के जीवन काल में एक व्यक्ति असाध्य रोग से पीड़ित था। जब वह किसी प्रकार भी कष्ट सह न सका तो वह बिलकुल निराश हो गया और एक रात्रि को कुएँ में कूद पड़ा। तत्क्षण ही महाराज वहाँ पहुँच गए और उन्होंने स्वयं अपने हाथों से उसे बाहर निकाला। वे उसे समझाने लगे कि '' **तुम्हें अपने शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना चाहिए। यदि भोग अपूर्ण रह गया तो पुनर्जन्म धारण करना पड़ेगा, इसलिए मृत्यु से यह श्रेयस्कर है कि कुछ काल तक उन्हें सहन कर पूर्व जन्मों के कर्मों का भोग समाप्त कर सदैव के लिए मुक्त हो जाओ।''**

यह सामयिक और उपयुक्त कथा पढ़कर आम्बड़ेकर को महान् आश्चर्य हुआ और वे द्रवित हो गए।

यदि इस कथा द्वारा उन्हें बाबा का संकेत प्राप्त न होता तो अभी तक उनका प्राणान्त ही हो गया होता। बाबा की व्यापकता और दयालुता देखकर उनका विश्वास दृढ़ हो गया और वे बाबा के परम भक्त बन गए। उनके पिता श्री अक्कलकोटकर महाराज के शिष्य थे और बाबा की इच्छा भी उन्हें के पद-चिन्हों का अनुकरण कराने की थी। बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अब उनका भाग्य चमक उठा। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में निपुणता प्राप्त कर उसमें बहुत उन्नति कर ली और बहुत-सा धन अर्जित करके अपना शेष जीवन सुख और शांन्तिपूर्वक व्यतीत किया।

।। सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २७ ।।

भागवत और विष्णुसहस्त्रनाम प्रदान कर अनुगृहीत करना, गीता रहस्य, दादासाहे ब खापर्डे।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि श्रीसाईबाबा ने किस प्रकार धार्मिक ग्रन्थों को करस्पर्श से पवित्र कर अपने भक्तों को पारायण के लिए देकर अनुगृहीत किया तथा और भी अन्य कई घटनाओं का उल्लेख किया गया है।

प्रारम्भ

जन-साधारण का ऐसा विश्वास है कि समुद्र में स्नान कर लेने से ही समस्त तीर्थों तथा पवित्र नदियों में स्नान करने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार सद्गुरु के चरणों का आश्रय लेने मात्र से तीनों शक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, और महेश) और परब्रह्म को नमन करने का श्रेय सहज ही प्राप्त हो जाता है। श्री सच्चिदानंद साईमहाराज की जय हो! वे तो भक्तों के लिए कामकल्पतरु, दया के सागर और आत्मानुभूति देने वाले हैं। हे साई! तुम अपनी कथाओं के श्रवण में मेरी श्रद्धा जागृत कर दो। घनघोर वर्षा ऋतु में जिस प्रकार चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र की केवल एक बूँद का पान कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार अपनी कथाओं के सारसिन्धु से प्रगटित एक जल कण का सहस्त्रांश दे दो, जिससे पाठकों और श्रोताओं के हृदय तृप्त होकर प्रसन्नता से भरपूर हो जाए। शरीर से स्वेद प्रवाहित होने लगे, आँसुओं से नेत्र परिपूर्ण हो जाएँ, प्राण स्थिरता पाकर चित्त एकाग्र हो जाये और पल-पलपर रोमांच हो उठे, ऐसा सात्विक भाव सभी में जागृत कर दो। पारस्परिक वैमनस्य तथा वर्ग-अपवर्ग का भेद-भाव नष्ट कर दो, जिससे वे तुम्हारी भक्ति में सिसकें, बिलखें और कम्पित हो उठें। यदि ये सब भाव उत्पन्न होने लगें तो इसे गुरु-कृपा के लक्षण जानो। इन भावों को अन्तःकरण में उदित देखकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें आत्मानुभूति की ओर अग्रसर करेंगे। **माया से मुक्त होने का एकमात्र सहज उपाय अनन्य भाव से केवल श्री साईबाबा की शरण जाना ही है। वेद-वेदान्त भी मायारुपी सागर से पार नहीं उतार सकते। यह कार्य तो केवल सद्गुरु द्वारा ही संभव है।** समस्त प्राणियों और भूतों में ईश्वर-दर्शन करने के योग्य बनाने की क्षमता केवल उन्हीं में है।

पवित्र ग्रन्थों का प्रदान

गत अध्याय में बाबा की उपदेश-शैली की नवीनता ज्ञात हो चुकी है। इस अध्याय में उसके केवल एक उदाहरण का ही वर्णन करेंगे। भक्तों को जिस ग्रन्थविशेष का पारायण करना होता था, उसे वे बाबा के करकमलों में भेंट कर देते थे और यदि बाबा उसे अपने करकमलों से स्पर्श कर लौटा देते तो वे उसे स्वीकार कर लेते थे। उनकी ऐसी भावना हो जाती थी कि ऐसे ग्रन्थ का यदि नित्य पठन किया जाएगा तो बाबा सदैव उनके साथ ही होंगे। एक बार काका महाजनी श्री एकनाथी भागवत लेकर शिरड़ी आए। शामा ने यह ग्रन्थ अध्ययन के लिए उनसे ले लिया और उसे लिए हुए वे मस्जिद में पहुँचे। तब बाबा ने वह ग्रन्थ शामा से ले लिया और उन्होंने उसे स्पर्श कर कुछ विशेष पृष्ठों को देखकर उसे सँभाल कर रखने की आज्ञा देकर वापस लौटा दिया। शामा ने उन्हें बताया कि यह ग्रन्थ तो काकासाहेब का है और उन्हें इसे वापस लौटाना है। तब बाबा कहने लगे कि ''नहीं, नहीं, यह ग्रन्थ तो मैं तुम्हे दे रहा हूँ। तुम इसे सावधानी से अपने पास रखो। यह तुम्हें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।'' कुछ दिनों के पश्चात् काका महाजनी पुनः श्रीएकनाथी भागवत की दूसरी प्रति लेकर आए और बाबा के करकमलों में भेंट कर दी, जिसे बाबा ने प्रसाद-स्वरुप लौटाकर उन्हें भी उसे सावधानी से सँभाल कर रखने की आज्ञा दी। साथ ही बाबा ने उन्हें आश्वासन दिया कि यह तुम्हें उत्तम स्थिति में पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगा। काका ने उन्हें प्रणाम कर उसे स्वीकार कर लिया।

शामा और विष्णुसहस्त्रनाम

शामा बाबा के अंतरंग भक्त थे। इस कारण बाबा उन्हें एक विचित्र ढंग से 'विष्णुसहस्त्रनाम' प्रसादरुप में देने की कृपा करना चाहते थे। तभी एक रामदासी आकर कुछ दिन शिरड़ी में ठहरा। वह नित्य नियमानुसार प्रातःकाल उठता और हाथ मुँह धोने के पश्चात् स्नान कर भगवा वस्त्र धारण करता तथा शरीर पर भस्म लगाकर विष्णुसहस्त्रनाम का जप किया करता था। वह अध्यात्मरामायण का भी श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ किया करता था और अधिकांश इन्हीं ग्रन्थों को ही पढ़ा करता था। कुछ दिनों के पश्चात् बाबा ने शामा को भी 'विष्णुसहस्त्रनाम' से परिचित कराने का विचार कर रामदासी को अपने समीप बुलाकर उससे कहा कि मेरे उदर में अत्यन्त पीड़ा हो रही है और जब तक मैं सोनामुखी का सेवन न करुँगा, तब तक मेरा कष्ट दूर न होगा। तब रामदासी ने अपना पाठ स्थगित कर दिया और वह औषधि लाने बाजार चला गया। उसी समय बाबा अपने आसन से उठे और जहाँ वह पाठ किया करता था, वहाँ जाकर उन्होंने विष्णुसहस्त्रनाम की वह पुस्तिका उठाई और पुनः अपने आसन पर विराजमान होकर शामा से कहने लगे कि'' यह पुस्तक अमूल्य और मनोवांछित फल देने वाली है। इसलिए मैं तुम्हें इसे प्रदान कर रहा हूँ, ताकि तुम इसका नित्य पठन करो। एक बार जब मैं अधिक रुग्ण था तो मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरे प्राणपखेरु उड़ना ही चाहते थे कि उसी समय मैंने इस सद्ग्रन्थ को अपने हृदय पर रख लिया। कैसा सुख पहुँचाया इसने? उस समय मुझे ऐसा ही भान हुआ, मानो अल्लाह ने स्वयं ही पृथ्वी पर आकर मेरी रक्षा की। इस कारण यह ग्रन्थ मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इसे थोड़ा धीरे-धीरे, कम से कम एक श्लोक प्रतिदिन अवश्य पढ़ना, जिससे तुम्हारा बहुत भला होगा।'' तब शामा कहने लगे कि '' मुझे इस ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस का स्वामी रामदासी एक पागल, हठी और अतिक्रोधी व्यक्ति है, जो व्यर्थ ही अभी आकर लड़ने को तैयार हो जाएगा। अल्पशिक्षित होने के नाते, मैं संस्कृत भाषा में लिखित इस ग्रन्थ को पढ़ने में भी असमर्थ हूँ।'' शामा की धारणा थी कि बाबा मेरे और रामदासी के बीच मनमुटाव करवाना चाहते हैं, इसलिये ही यह नाटक रचा है। बाबा का विचार उनके प्रति क्या था, यह उनकी समझ में न आया। बाबा 'येन केन प्रकारेण' विष्णुसहस्त्रनाम उसके कंठ में उतार देना चाहते थे। वे तो अपने एक अल्पशिक्षित अंतरंग भक्त को सांसारिक दुःखों से मुक्त कर देना चाहते थे। **ईश्वर-नाम के जप का महत्व तो सभी को विदित ही है, जो हमें पापों से बचाकर कुवृत्तियों से हमारी रक्षा कर, जन्म तथा मृत्यु के बन्धन से छुड़ा देता है। यह आत्मशुद्धि के लिए एक उत्तम साधन है, जिसमें न किसी सामग्री की आवश्यकता है और न किसी नियम के बन्धन की। इससे सुगम और प्रभावकारी साधन अन्य कोई नहीं।** बाबा की इच्छा तो शामा से यह साधना कराने की थी, परन्तु शामा ऐसा न चाहते थे, इसीलिये बाबा ने उनपर दबाव डाला। ऐसा अधिकांश सुनने में आया है कि बहुत पहले श्री एकनाथ महाराज ने भी अपने एक पड़ोसी ब्राह्मण से विष्णुसहस्त्रनाम का जप करने के लिए आग्रह कर उसकी रक्षा की थी। विष्णुसहस्त्रनाम का जप चित्तशुद्धि के लिए एक श्रेष्ठ तथा स्पष्ट मार्ग है। इसीलिए बाबा ने शामा को अनुरोधपूर्वक इसके जप में प्रवृत्त किया। रामदासी बाजार से तुरन्त सोनामुखी लेकर लौट आया। अण्णा चिंचणीकर, जो वहीं उपस्थित थे, प्रायः पूरे 'नारद मुनि' ही थे और उन्होंने उक्त घटना का सम्पूर्ण वृत्तांत रामदासी को बता दिया।

रामदासी क्रोधावेश में आकर शामा की ओर लपका और कहने लगा कि '' यह तुम्हारा ही कार्य है, जो तुमने बाबा के द्वारा मुझे उदर पीड़ा के बहाने औषधि लेने को भेजा। यदि तुमने पुस्तक न लौटाई तो मैं तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।'' शामा ने उसे शान्तिपूर्वक समझाया, परन्तु उनका कहना व्यर्थ ही हुआ। तब बाबा प्रेमपूर्वक बोले कि '' अरे रामदासी, यह क्या बात है? क्यों उपद्रव कर रहे हो? क्या शामा अपना बालक नहीं है? तुम उसे व्यर्थ ही क्यों गाली दे रहे हो? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी प्रकृति ही उपद्रवी है। क्या तुम नम्र और मृदुल वाणी नहीं बोल सकते? तुम नित्य प्रति इन पवित्र ग्रन्थो का पाठ किया करते हो और फिर भी तुम्हारा चित्त अशुद्ध ही है? जब तुम्हारी इच्छाएँ ही तुम्हारे वश में नहीं हैं तो तुम रामदासी कैसे? तुम्हें तो समस्त वस्तुओं से अनासक्त(वैराग्य) होना चाहिए। कैसी विचित्र बात है कि तुम्हें इस पुस्तक पर इतना अधिक मोह है? सच्चे रामदासी को तो ममता त्याग कर समदर्शी होना चाहिए। तुम तो अभी बालक शामा से केवल एक छोटी सी पुस्तक के लिए झगड़ा कर रहे थे। जाओ, अपने आसन पर बैठो। पैसों से पुस्तकें तो अनेक प्राप्त हो सकती हैं, परन्तु मनुष्य नहीं। उत्तम विचारक बनकर विवेकशील होओ। पुस्तक का मूल्य ही क्या है और उसने शामा को क्या प्रयोजन ? मैंने स्वयं उठाकर वह पुस्तक उसे दी थी, यह सोचकर कि तुम्हें तो यह पुस्तक पूर्णतः कंठस्थ है। शामा को इसके पठन से कुछ लाभ पहुँचे, इसलिए मैंने उसे दे दी।'' बाबा के ये शब्द कितने मृदु और मार्मिक तथा अमृततुल्य हैं! इनका प्रभाव रामदासी पर पड़ा। वह चुप हो गया तथा फिर शामा से बोला कि मैं इसके बदले में पंचरत्नी गीता की एक प्रति स्वीकार कर लूँगा। तब शामा भी प्रसन्न होकर कहने लगे कि '' एक ही क्यों, मैं तो तुम्हें उसके बदले में १० प्रतियाँ देने को तैयार हूँ।''

इस प्रकार यह विवाद तो शान्त हो गया, परन्तु अब प्रश्न यह आया कि रामदासी ने पंचरत्नी गीता के लिये-एक ऐसी पुस्तक जिसका उसे कभी ध्यान भी न आया था, इतना आग्रह क्यों किया और जो मस्जिद में हर दिन धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करता हो, वह बाबा के समक्ष ही इतना उत्पात करने पर क्यों उतारु हो गया ? हम नहीं जानते कि इस दोष का निराकरण कैसे करें और किसे दोषी ठहरावें? हम तो केवल इतना ही जान सके हैं कि यदि इस प्रणाली का अनुसरण न किया गया होता तो विषय का महत्व और ईश्वर नाम की महिमा तथा शामा को विष्णुसहस्त्रनाम के पठन का शुभ अवसर ही प्राप्त न होता। इससे यही प्रतीत होता है कि बाबा के उपदेश की शैली और उसकी प्रक्रिया अद्वितीय है। शामा ने धीरे-धीरे इस ग्रन्थ का इतना अध्ययन कर दिया और उन्हें इस विषय का इतना ज्ञान हो गया कि वह श्रीमान् बूटीसाहब के दामाद-प्रोफेसर जी.जी. नारके, एम.ए. (इंजिनियरिग कालेज, पूना) को भी उसका यथार्थ अर्थ समझाने में पूर्ण सफल हुए।

गीता रहस्य

ब्रह्मविद्या (अध्यात्म) का जो भक्त अध्ययन करते, उन्हें बाबा सदैव प्रोत्साहित करते थे। इसका एक उदाहरण है कि एक समय बापूसाहेब जोग का एक पार्सल आया, जिसमें श्री. लोकमान्य तिलक कृत गीता-भाष्य की एक प्रति थी, जिसे काँख में दबाए हुए वे मस्जिद में आये। जब वे चरण-वन्दना के लिए झुके तो वह पार्सल बाबा के श्री-चरणों पर गिर पड़ा। तब बाबा उनसे पूछने लगे कि इसमें क्या है? श्री. जोग ने तत्काल ही पार्सल से वह पुस्तक निकालकर बाबा के कर-कमलों में रख दी। बाबा ने थोड़ी देर उसके कुछ पृष्ठ देखकर जेब से एक रुपया निकाला और उसे पुस्तक पर रखकर जोग को लौटा दिया और कहने लगे कि''इसका ध्यानपूर्वक अध्ययन करते रहो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।''

श्रीमान् और श्रीमती खापर्डे

एक बार श्री. दादासाहेब खापर्डे सहकुटुम्ब शिरड़ी आए और कुछ मास वहीं ठहरे। उनके ठहरने के नित्य कार्यक्रम का वर्णन श्रीसाईलीला पत्रिका के प्रथम भाग में प्रकाशित हुआ है। दादा कोई सामान्य व्यक्ति न थे। वे एक धनाढ्य और अमरावती (बरार) के सुप्रसिद्ध वकील तथा केन्द्रीय धारासभा (दिल्ली) के सदस्य थे। वे विद्वान् और प्रवीण वक्ता भी थे। इतने गुणवान् होते हुए भी उन्हें बाबा के समक्ष मुँह खोलने का साहस न होता था। अधिकांश भक्तगण तो बाबा से हर समय अपनी शंका का समाधान कर लिया करते थे। केवल तीन व्यक्ति खापर्डे, नूलकर और बूटी ही ऐसे थे, जो सदैव मौन धारण किए रहते तथा अति विनम्र और उत्तम प्रकृति के व्यक्ति थे। दादासाहेब, विद्यारण्य स्वामी द्वारा रचित **पंचदशी** नामक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ, जिसमें अद्वैतवेदान्त का दर्शन है, उसका विवरण दूसरों को तो समझाया करते थे, परन्तु जब वे बाबा के समीप मस्जिद में आए तो वे एक शब्द का भी उच्चारण न कर सके। यथार्थ में कोई व्यक्ति, चाहे वह जितना वेदवेदान्तों में पारंगत क्यों न हो, परन्तु ब्रह्मपद को पहुँचे हुए व्यक्ति के समक्ष उसका शुष्क ज्ञान प्रकाश नहीं दे सकता। दादा चार मास तथा उनकी पत्नी सात मास वहाँ ठहरीं। वे दोनों अपने शिरड़ी-प्रवास से अत्यन्त प्रसन्न थे। श्रीमती खापर्डे श्रद्धालु तथा पूर्ण भक्त थीं, इसलिए उनका साई चरणों में अत्यन्त प्रेम था। प्रतिदिन दोपहर को वे लौटकर अपना भोजन किया करती थीं। बाबा उनकी अटल श्रद्धा की झाँकी का दूसरों नैवेद्य लेकर मस्जिद को जानी और जब बाबा उसे ग्रहण कर लेते तभी वे दुसरों को भी दर्शन कराना चाहते थे। एक दिन दोपहर को वे साँजा, पूरी, भात, सार, खीर और अन्य भोज्य पदार्थ लेकर मस्जिद में आईं।

और दिनों तो भोजन प्रायः घंटों तक बाबा की प्रतीक्षा में पड़ा रहता था, परन्तु उस दिन वे तुरंत ही उठे और भोजन के स्थान पर आकर आसन ग्रहण कर लिया और थाली पर से कपड़ा हटाकर उन्होंने रुचिपूर्वक भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। तब शामा कहने लगे कि '' यह पक्षपात क्यों? दूसरों की थालियों पर तो आप दृष्टि तक नहीं डालते, उल्टे उन्हें फेंक देते हैं, परन्तु आज इस भोजन को आप बड़ी उत्सुकता और रुचि से खा रहे हैं। आज इस बाई का भोजन आपको इतना स्वादिष्ट क्यो लगा? यह विषय तो हम लोगों के लिए एक समस्या बन गया है।'' तब बाबा ने इस प्रकार समझायाः-

''सचमुच ही इस भोजन में एक विचित्रता है। पूर्व जन्म में यह बाई एक व्यापारी की मोटी गाय थी, जो बहुत अधिक दूध देती थी। पशुयोनि त्यागकर इसने एक माली के कु टुम्ब में जन्म लिया। उस जन्म के उपरान्त फिर यह एक

क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुई और इसका ब्याह एक व्यापारी से हो गया। दीर्घ काल के पश्चात् इनसे भेंट हुई है। इसलिये इनकी थाली में से प्रेमपूर्वक चार ग्रास तो खा लेने दो।'' ऐसा बतला कर बाबा ने भर पेट भोजन किया और फिर हाथ मुँह धोकर और तृप्ति की चार-पाँच डकारें लेकर वे अपने आसन पर पुनः आ विराजे। फिर श्रीमती खापर्डे ने बाबा को नमन किया और उनके पाद-सेवन करने लगी। बाबा उनसे वार्त्तालाप करने लगे और साथ-साथ उनके हाथ भी दबाने लगे। इस प्रकार परस्पर सेवा करते देख शामा मुस्कुराने लगा और बोला कि '' देखो तो, यह एक अद्‌भुत दृश्य है कि भगवान और भक्त एक दूसरे की सेवा कर रहे हैं। '' उनकी सच्ची लगन देखकर बाबा अत्यन्त कोमल तथा मृदु शब्दों में अपने श्रीमुख से कहने लगे कि अब सदैव ''राजाराम, राजाराम'' का जप किया करो और यदि तुमने इसका अभ्यास क्रमबद्ध कर लिया तो तुम्हें अपने जीवन के ध्येय की प्राप्ति अवश्य हो जाएगी। तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होकर अत्यधिक लाभ होगा। आध्यात्मिक विषयों से अपरिचित व्यक्तियों के लिये यह घटना साधारण-सी प्रतीत होगी, परन्तु शास्त्रीय भाषा में यह 'शक्तिपात्' के नाम से विदित है, अर्थात् गुरु द्वारा शिष्य में शक्तिसंचार करना । कितने शक्तिशाली और प्रभावकारी बाबा के वे शब्द थे, जो एक क्षण में ही हृदय-कमल में प्रवेश कर गए और वहाँ अंकुरित हो उठे। यह घटना गुरु-शिष्य सम्बन्ध के आदर्श की द्योतक है। गुरु -शिष्य दोनों को एक दूसरे को अभिन्न जानकर प्रेम और सेवा करनी चाहिए, क्योंकि उन दोनों में कोई भेद नहीं है। वे दोनो अभिन्न और एक ही हैं, जो कभी पृथक् नहीं हो सकते। शिष्य गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख रहा है, यह तो केवल बाह्य दृश्यमात्र है। आन्तरिक दृष्टिसे दोनों अभिन्न और एक ही हैं तथा जो उनमें भेद समझता है, वह अभी अपरिपक्व और अपूर्ण ही है।

।। श्री सद्‌गुरुनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २८ ।।

चिड़ियों का शिरड़ी को खींचा जाना-

(१) लक्ष्मीचंद (२) बुरहानपुर की महिला (३) मेघा का निर्वाण।

प्राक्कथन

श्री साई अनंत हैं। वे एक चींटी से लेकर ब्रह्मांण्ड पर्यन्त सर्व भूतों में व्याप्त हैं। वेद और आत्मविज्ञान में पूर्ण पारंगत होने के कारण वे सद्गुरु कहलाने के सर्वथा योग्य हैं। ? चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, परन्तु यदि वह अपने शिष्य की जागृति कर उसे आत्मस्वरुप का दर्शन न करा सके तो उसे सद्गुरु के नाम से कदापि सम्बोधित नहीं किया जा सकता। साधारणतः पिता केवल इस नश्वर शरीर का ही जन्मदाता है, परन्तु सद्गुरु जो जन्म और मृत्यु दोनों से ही मुक्ति करा देने वाले हैं। अतः वे अन्य लोगों से अधिक दयावान् हैं।

श्री साईबाबा हमेशा कहा करते थे कि '' **मेरा भक्त चाहे एक हजार कोस की दूरी पर ही क्यों न हो, वह शिरड़ी को ऐसा खिंचता चला आता है, जैसे धागे से बँधी हुई चिड़ियाँ खिंच कर स्वयं ही आ जाती हैं।**'' इस अध्याय में ऐसी ही तीन चिड़ियों का वर्णन है।

लाला लक्ष्मीचन्द

ये महानुभाव बम्बई के श्री वेंकटेश्वर प्रेस में नौकरी करते थे। वहाँ से नौकरी छोड़कर वे रेलवे विभाग में आए और फिर वे मेसर्स रैली ब्रदर्स एंड कम्पनी में मुन्शी का कार्य करने लगे। उनका सन् १९१० में श्री साईबाबा से सम्पर्क हुआ। बड़े दिन (क्रिसमस) से लगभग एक या दो मास पहले सांताक्रुज में उन्होंने स्वप्न में एक दाढ़ीवाले वृद्ध को देखा, जो चारों ओर से भक्तों से घिरा हुआ खड़ा था। कुछ दिनों के पश्चात् वे अपने मित्र श्री. दत्तात्रेय मंजुनाथ बिजूर के यहाँ दासगणू का कीर्त्तन सुनने गए। दासगणू का यह नियम था कि वे कीर्त्तन करते समय श्रोताओं के सम्मख श्री साईबाबा का चित्र रख लिया करते थे। लक्ष्मीचन्द को यह चित्र देखकर महान् आश्चर्य हुआ, क्योंकि स्वप्न में उन्हें जिस वृद्ध के दर्शन हुए थे, उनकी आकृति भी ठीक इस चित्र के अनुरुप ही थी। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्वप्न में दर्शन देने वाले स्वयं शिरड़ी के श्री साईनाथ समर्थ के अतिरिक्त और कोई नहीं है। चित्र-दर्शन, दासगणू का मधुर कीर्त्तन और उनके संत तुकाराम पर प्रवचन आदि का कुछ ऐसा प्रभाव उनपर पड़ा कि उन्होंने शिरड़ी-यात्रा का दृढ़ संकल्प कर लिया। भक्तों को चिरकाल से ही ऐसा अनुभव होता आया है कि **जो सद्गुरु या अन्य किसी आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में निकलता है, उसकी ईश्वर सदैव ही कुछ न कुछ सहायता करते हैं।** उसी रात्रि को लगभग आठ बजे उनके एक मित्र शंकरराव ने उनका द्वार खटखटाया और पूछा कि क्या आप हमारे साथ शिरड़ी चलने को तैयार हैं? लक्ष्मीचन्द के हर्ष का पारावार न रहा और उन्होंने तुरन्त ही शिरड़ी चलने का निश्चय कर लिया। एक मारवाड़ी से पन्द्रह रुपये उधार लेकर तथा अन्य आवश्यक प्रबन्ध कर उन्होंने शिरड़ी को प्रस्थान कर दिया। रेलगाड़ी में उन्होंने अपने मित्र के साथ कुछ देर भजन भी किया। उसी डिब्बे में चार यवन यात्री भी बैठे थे, जो शिरड़ी के समीप ही अपने-अपने घरों को लौट रहे थे। लक्ष्मीचन्द ने उन लोगों से श्री साईबाबा के सम्बन्ध में कुछ पुछताछ की। तब लोगों ने उन्हें बताया कि श्री साईबाबा शिरड़ी में अनेक वर्षो से निवास कर रहे हैंऔर वे एक पहुँचे हुए संत हैं। जब वे कोपरगाँव पहुँचे तो बाबा को भेंट देने के लिए कुछ अमरुद खरीदने का उन्होंने विचार किया। वे वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्यमय दृश्य देखने में कुछ ऐसे तल्लीन हुए कि उन्हें अमरुद लेने की सुध ही न रही। परन्तु जब वे शिरड़ी के समीप आये तो एकाएक उन्हें अमरुद खरीदने की स्मृति हो आई। इसी बीच उन्होंने देखा कि एक वृद्धा टोकरी में अमरुद लिए ताँगे के पीछे-पीछे दौड़ती चली आ रही है। यह देख उन्होंने ताँगा रुकवाया और उनमें से कुछ बढ़िया अमरुद खरीद लिए। तब वह वृद्धा उनसे कहने लगी कि '' कृपा कर ये शेष अमरूद भी मेरी ओर से बाबा को भेंट कर देना। '' यह सुनकर तत्क्षण ही उन्हें विचार हो आया कि मैंने अमरुद खरीदने की जो इच्छा पहले की थी और जिसे मैं भूल गया था, उसी की इस वृद्धा ने पुनः स्मृति

करा दी है। श्री साईबाबा के प्रति उसकी भक्ति देख वे दोनों बड़े चकित हुए। लक्ष्मीचंद ने यह सोचकर कि हो सकता है कि स्वप्न में जिस दृद्ध के दर्शन मैंने किए थे, उनकी ही यह कोई रिश्तेदार हो, वे आगे बढ़े। शिरड़ी के समीप पहुँचने पर उन्हें दूर से ही मस्जिद में फहराती ध्वजाएँ दीखने लगीं, जिन्हें देख प्रणाम कर अपने हाथ में पूजन-सामग्री लेकर वे मस्जिद पहुँचे और बाबा का यथाविधि पूजन कर वे द्रवित हो गए। उनके दर्शन कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए तथा उनके शीतल चरणों से ऐसे लिपटे, जैसे एक मधुमक्खी कमल के मकरन्द की सुगन्ध से मुग्ध होकर उससे लिपट जाती है। तब बाबा ने उनसे जो कुछ कहा, उसका वर्णन हेमाड़पंत ने अपने मूल ग्रन्थ में इस प्रकार किया है ''साले,रास्ते में भजन करते और दूसरे आदमी से पूछते हैं। क्या दूसरे से पूछना? सब कुछ अपनी आँखों से देखना। क्यों दूसरे आदमी से पूछना? सपना क्या झूठा है या सच्चा? कर लो अपना विचार आप। मारवाड़ी से उधार लेने की क्या जरुरत थी ? हुई क्या मुराद की पूर्ति?'' ये शब्द सुनकर उनकी सर्वव्यापकता पर लक्ष्मीचन्द को बड़ा अचम्भा हुआ। वे बड़े लज्जित हुए कि घर से शिरड़ी तक मार्ग में जो कुछ हुआ, उसका उन्हें सब पता है। इसमें विशेष ध्यान देने योग्य बात केवल यह है कि बाबा यह नहीं चाहते थे कि उनके दर्शन के लिए कर्ज लिया जाए या तीर्थ यात्रा में छुट्टी मनाए।

साँजा (उपमा)

दोपहर के समय जब लक्ष्मीचंद भोजन को बैठे तो उन्हें एक भक्त ने साँजे का प्रसाद लाकर दिया, जिसे पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन भी वे साँजा की आशा लगाए बैठे रहे, परन्तु किसी भक्त ने वह प्रसाद न दिया, जिसके लिए वे अति उत्सुक थे। तीसरे दिन दोपहर की आरती पर बापूसाहेब जोग ने बाबा से पूछा कि नैवेद्य के लिए क्या बनाया जाए? तब बाबा ने उनसे साँजा लाने को कहा। भक्तगण दो बड़े बर्तनों में साँजा भर कर ले आए। लक्ष्मीचंद को भूख भी अधिक लगी थी। साथ ही उनकी पीठ में दर्द भी था। बाबा ने लक्ष्मीचंद से कहा-(हेमाडपंत ने मूल ग्रंथ में इस प्रकार वर्णन किया है) ''तुमको भूख लगी है, अच्छा हुआ। कमर में दर्द भी है। लो, अब साँजे की ही करो दवा।'' उन्हें पुनः अचम्भा हुआ कि मेरे मन के समस्त विचारों को उन्होंने जान लिया है। वस्तुतः वे सर्वज्ञ हैं!

कुदृष्टि

इसी यात्रा में एक बार उनको चावड़ी का जुलूस देखने का भी सौभाग्य प्राप्त हो गया। उस दिन बाबा क फ़ से अधिक पीड़ित थे। उन्हें विचार आया कि इस कफ़ का कारण शायद किसी की नजर लगी हो। दूसरे दिन प्रातः काल जब बाबा मस्जिद को गए तो शामा से कहने लगे कि '' कल जो मुझे कफ़ से पीड़ा हो रही थी, उसका मुख्य कारण किसी की कुदृष्टि ही है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की नजर लग गई है, इसीलिए यह पीड़ा मुझे हो गई है। लक्ष्मीचन्द के मन में जो विचार उठ रहे थे, वही बाबा ने भी कह दिए। बाबा की सर्वज्ञता के अनेक प्रमाण तथा भक्तों के प्रति उनका स्नेह देखकर लक्ष्मीचंद बाबा के चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे कि '' आपके प्रिय दर्शन से मेरे चित्त को बड़ी प्रसन्नता हुई है। मेरा मन-मधुप आपके चरण कमल और भजनों में ही लगा रहे। आपके अतिरिक्त भी अन्य कोई ईश्वर है, इसका मुझे ज्ञान नहीं। मुझ पर आप सदा दया और स्नेह करें और अपने चरणों के दीन दास की रक्षा कर उसका कल्याण करें। आपके भवभयनाशक चरणों का स्मरण करते हुए मेरा जीवन आनन्द से व्यतीत हो जाए, ऐसी मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है।''

बाबा से आशीर्वाद तथा उदी लेकर वे मित्र के साथ प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर मार्ग में उनकी कीर्त्ति का गुणगान करते हुए घर वापस लौट आये और सदैव उनके अनन्य भक्त बने रहे। शिरडी जाने वालों के हाथ वे उनको हार, कपूर और दक्षिणा भेजा करते थे।

बुरहानपुर की महिला

अब हम दूसरी चिड़िया (भक्त) का वर्णन करेंगे। एक दिन बुरहानपुर में एक महिला ने स्वप्न में देखा कि श्रीसाईबाबा उसके द्वार पर खड़े भोजन के लिए खिचड़ी माँग रहे हैं। उसने उठकर देखा तो द्वारपर कोई भी न था। फिर भी वह प्रसन्न हुई और उसने यह स्वप्न अपने पति तथा अन्य लोगों को सुनाया। उसका पति डाक विभाग में नौकरी करता था। वे दोनों ही बड़े धार्मिक थे। जब उसका स्थानान्तरण अकोला को होने लगा तो दोनों ने शिरड़ी जाने का भी निश्चय किया और एक शुभ दिन उन्होंने शिरड़ी को प्रस्थान कर दिया। मार्ग में गोमती तीर्थ होकर वे शिरड़ी पहुँचे और वहाँ दो माह तक ठहरे। प्रतिदिन वे मस्जिद जाते और बाबा का पूजन कर आनन्द से अपना समय व्यतीत करते थे। यद्यपि दम्पति खिचड़ी का नैवेद्य भेंट करने को ही आए थे, परन्तु किसी कारणवश उन्हें १४

दिनों तक ऐसा संयोग प्राप्त न हो सका। उनकी स्त्री इस कार्य में अब अधिक विलम्ब न करना चाहती थी। इसीलिए जब १५ वें दिन दोपहर के समय वह खिचड़ी लेकर मस्जिद में पहुँची तो उसने देखा कि बाबा अन्य लोगों के साथ भोजन करने बैठ चुके हैं। परदा गिर चुका था, जिसके पश्चात् किसी का साहस न था कि वह भीतर प्रवेश कर सके। परन्तु वह एक क्षण भी प्रतीक्षा न कर सकी और हाथ से परदा हटाकर भीतर चली आई। बड़े आश्चर्य की बात थी कि उसने देखा कि बाबा की इच्छा उस दिन प्रथमतः खिचड़ी खाने की ही थी, जिसकी उन्हें आवश्यकता थी। जब वह थाली लेकर भीतर आई तो बाबा को बड़ा हर्ष हुआ और वे उसी में से खिचड़ी के ग्रास लेकर खाने लगे। बाबा की ऐसी उत्सुकता देख प्रत्येक को बड़ा आश्चर्य हुआ और जिन्होंने यह खिचड़ी की वार्त्ता सुनी, उन्हें भक्तों के प्रति बाबा का असाधारण स्नेह देख बड़ी प्रसन्नता हुई।

मेघा का निर्वाण

अब तृतीय महान् पक्षी की चर्चा सुनिए। बिरमगाँव का रहने वाला मेघा अत्यन्त सीधा और अनपढ़ व्यक्ति था। वह रावबहादुर ह.वि. साठे के यहाँ रसोईए का काम किया करता था। वह शिवजी का परम भक्त था, और सदैव पंचाक्षरी मंत्र '' नमः शिवाय '' का जप किया करता था। सन्ध्योपासना आदि का उसे कुछ भी ज्ञान न था। यहाँ तक कि वह संध्या के मूल गायत्रीमंत्र को भी न जानता था। रावबहादुर साठे का उस पर अत्यन्त स्नेह था। इसलिए उन्होंने उसे सन्ध्या की विधि तथा गायत्रीमंत्र सिखला दिया। साठेसाहेब ने श्री साईबाबा को शिवजी का साक्षात अवतार बतलाकर उसे शिरड़ी भेजने का निश्चय किया। किन्तु साठेसाहेब से पूछनेपर उन्होंने बताया कि श्री साईबाबा तो यवन है। इसलिए मेघा ने सोचा कि शिरड़ी में एक यवन को प्रणाम करना पड़े यह अच्छी बात नहीं है। भोला-भाला आदमी तो वह था ही, इसलिए उसके मन में असमंजस पैदा हो गया। तब उसने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि कृपा कर मुझे वहाँ न भेजें। परन्तु साठेसाहेब कहाँ मानने वाले थे? उनके सामने मेघा की एक न चली। उन्होंने उसे किसी प्रकार शिरड़ी भेज दिया तथा उसके द्वारा अपने ससुर गणेश दामोदर उपनाम दादा केलकर को, जो शिरड़ी में ही रहते थे- एक पत्र भेजा कि मेघाका परिचय बाबा से करा देना। शिरड़ी पहुँचने पर जब वह मस्जिद में घुसा तो बाबा उत्यन्त क्रोधित हो गए और उसे उन्होंने मस्जिद में आने की मनाही कर दी। वे गर्जना कर कहने लगे कि '' उसे बाहर निकाल दो। '' फिर मेघा की ओर देखकर कहने लगे कि '' तुम तो एक उच्च कुलीन ब्राह्मण हो और मैं निम्न जाति का एक यवन। तुम्हारी जाति भ्रष्ट हो जाएगी। इसलिए यहाँ से बाहर निकल जाओ।'' ये शब्द सुनकर मेघा काँप उठा । उसे बड़ा विस्मय हुआ कि जो कुछ उसके मन में विचार उठ रहे थे, उन्हें बाबा ने कैसे जान लिया ? किसी प्रकार वह कुछ दिन वहाँ ठहरा और अपनी इच्छानुसार सेवा भी करता रहा, परन्तु उसकी इच्छा तृप्त न हुई। फिर वह घर लौट आया और वहाँ से त्रिंबक (नासिक जिला) को चला गया। वर्ष भरके पश्चात् वह पुनः शिरड़ी आया और इस बार दादा केलकर के कहने से उसे मस्जिद में रहने का अवसर प्राप्त हो गया । साईबाबा मौखिक उपदेश द्वारा मेघा की उन्नति करने के बदले उसका आंतरिक सुधार कर रहे थे। उसकी स्थिति में पर्याप्त परिवर्त्तन हो कर यथेष्ट प्रगति हो चुकी थी और अब तो वह श्री साईबाबा को शिवजी का ही साक्षात् अवतार समझने लगा था। शिवपूजन में बिल्व पत्रों की आवश्यकता होती है। इसलिए अपने शिवजी (बाबा) का पूजन करने के हेतु बिल्वपत्रों की खोज में वह मीलों दूर निकल जाया करता था। प्रतिदिन उसने ऐसा नियम बना लिया था कि गाँव में जितने भी देवालय थे, प्रथम वहाँ जाकर वह उनका पूजन करता और इसके पश्चात् ही वह मस्जिद में बाबा को प्रणाम करता तथा कुछ देर चरण-सेवा करने के पश्चात् ही चरणामृत पान करता था। एक बार ऐसा हुआ कि खंडोबा के मंदिर का द्वार बन्द था। इस कारण वह बिना पूजन किए ही वहाँ से लौट आया और जब वह मस्जिद में आया तो बाबा ने उसकी सेवा स्वीकार न की तथा उसे पुनः वहाँ जाकर पूजन कर आने को कहा और उसे बतलाया कि अब मंदिर के द्वार खुल गए हैं। मेघा ने जाकर देखा कि सचमुच मंदिर के द्वार खुल गये हैं। जब उसने लौटकर यथाविधि पूजा की, तब कहीं बाबा ने उसे अपना पूजन करने की अनुमति दी।

गंगास्नान

एक बार मकर संक्रान्ति के अवसर पर मेघा ने विचार किया कि बाबा को चन्दन का लेप करुँ तथा गंगाजल से उन्हें स्नान कराऊँ। बाबा ने पहले तो इसके लिए अपनी स्वीकृति न दी, परन्तु उसकी लगातार प्रार्थना के उपरांत उन्होंने किसी प्रकार स्वीकर कर लिया। गोदावरी नदी का पवित्र जल लाने के लिए मेघा को आठ कोस का चक्कर लगाना पड़ा। वह जल लकर लौट आया और दोपहर तक पूर्ण व्यवस्था कर ली। तब उसने बाबा को तैयार होने की सूचना दी । बाबा ने पुनः मेघा से अनुरोध किया कि ''मुझे इस झंझट से दूर ही रहने दो। मैं तो एक फकीर हुँ,

मुझे गंगाजल से क्या प्रयोजन?'' परन्तु मेघा कुछ सुनता ही न था। मेघा की तो यह दृढ़ धारणा थी कि शिवजी गंगाजल से अधिक प्रसन्न होते हैं। इसलिए ऐसे शुभ पर्व पर अपने शिवजी को स्नान कराना हमारा परम कर्त्तव्य है। अब तो बाबा को सहमत होना ही पड़ा और नीचे उतर कर वे एक पीढ़े पर बैठ गए तथा अपना मस्तक आगे करते हुए कहा कि '' अरे मेघा ! कम से कम इतनी कृपा तो करना कि मेरे केवल सिर पर ही पानी डालना। सिर शरीर का प्रधान अंग है और उस पर पानी डालना ही पर पानी डालना ही पूरे शरीर पर डालने के सदृश है।'' मेघा ने '' अच्छा अच्छा'' कहते हुए बर्तन उठाकर सिर पर पानी डालना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा करने से उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसने उच्च स्वर में '' हर हर गंगे '' की ध्वनि करते हुए समूचे बर्त्तन का पानी बाबा के सम्पूर्ण शरीर पर उँडेल दिया और फिर पानी का बर्त्तन एक ओर रखकर वह बाबा की ओर निहारने लगा। उसने देखा कि बाबा का तो केवल सिर ही भींगा है और शेष भाग ज्यों का त्यों बिल्कुल सूखा ही है। यह देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

त्रिशूल और पिंडी

मेघा बाबा को दो स्थानों पर स्नान कराया करता था। प्रथम वह बाबा को मस्जिद् में स्नान कराता और फिर वाड़े में नानासाहेब चाँदोरकर द्वारा प्राप्त उनके बड़े चित्र को। इस प्रकार यह क्रम १२ मास तक चलता रहा।

बाबा ने उसकी भक्ति तथा विश्वास दृढ़ करने के लिए उसे दर्शन दिए। एक दिन प्रातःकाल मेघा जब अर्ध निद्रावस्था में अपनी शैया पर पड़ा हुआ था, तभी उसे उनके श्रीदर्शन हुए। बाबा ने उसे जागृत जानकर अक्षत फेंके और कहा कि ''मेघा! मुझे त्रिशूल लगाओ। '' इतना कहकर वे अदृश्य हो गए। उनके शब्द सुनकर उसने उत्सुकता से अपनी आँखें खोलीं, परन्तु देखा कि वहाँ कोई नहीं है; केवल अक्षत ही यहाँ-वहाँ बिखरे पड़े हैं। तब वह उठकर बाबा के पास गया और उन्हें अपना स्वप्न सुनाने के पश्चात् उसने उन्हें त्रिशूल लगाने की आज्ञा माँगी। बाबा ने कहा कि ''क्या तुमने मेरे शब्द नहीं सुने कि मुझे त्रिशूल लगाओ। वह कोई स्वप्न तो नहीं, वरन् मेरी प्रत्यक्ष आज्ञा थी। **मेरे शब्द सदैव अर्थपूर्ण होते हैं, थोथे-पोचे नहीं। ''** मेघा कहने लगा कि आपने दया कर मुझे निद्रा से तो जागृत कर दिया है, परन्तु सभी द्वार पूर्ववत ही बन्द देखकर मैं मूढ़मति भ्रमित हो उठा हूँ कि कहीं स्वप्न तो नहीं देख रहा था। बाबा ने आगे कहा कि **'' मुझे प्रवेश करने के लिए किसी विशेष द्वार की आवश्यकता नही है। न मेरा कोई रुप ही है और न कोई अन्त ही। मैं सदैव सर्वभूतों में व्याप्त हूँ । जो मुझ पर विश्वास रखकर सतत मेरा ही चिन्तन करता है, उसके सब कार्य मैं स्वयं ही करता हूँ और अन्त में उसे श्रेष्ठ गति देता हूँ। ''** मेघा वाड़े को लौट आया और बाबा के चित्र के समीप ही दीवार पर एक लाल त्रिशूल खींच दिया । दूसरे दिन एक रामदासी भक्त पूने से आया। उसने बाबा को प्रणाम कर शंकर की एक पिंडी भेंट की। उसी समय मेघा भी वहाँ पहुँचे। तब बाबा उनसे कहने लगे कि देखो, शंकर भोले आ गए हैं। अब उन्हें सँभालो। मेघा ने पिंडी पर त्रिशूल लगा देखा तो उसे महान् विस्मय हुआ। वह वाड़े में आया। इस समय काकासाहेब दीक्षित स्नान के पश्चात् सिर पर तौलिया डाले 'साई' नाम का जप कर रहे थे। तभी उन्होंने ध्यान में एक पिंडी देखी , जिससे उन्हें कौतूहल-सा हो रहा था। उन्होंने सामने से मेघा को आते देखा । मेघा ने बाबा द्वारा प्रदत्त वह पिंडी काकासाहेब दीक्षित को दिखाई। पिंडी ठीक वैसी ही थी, जैसी कि उन्होंने कुछ घड़ी पूर्व ध्यान में देखी थी। कुछ दिनों में जब त्रिशूल का खींचना पूर्ण हो गया तो बाबा ने बड़े चित्र के पास (जिसका मेघा नित्य पूजन करता था) ही उस पिंडी की स्थापना कर दी । मेघा को शिव-पूजन से बडा प्रेम था । त्रिपुंड खींचने का अवसर देकर तथा पिंडी की स्थापना कर बाबा ने उसका विश्वास दृढ़ कर दिया।

इस प्रकार कई वर्षो तक लगातार दोपहर और सन्ध्या को नियमित आरती तथा पूजा कर सन् १९९२ में मेंघा परलोकवसी हो गया । बाबा ने उसके मृत शरीर पर अपना हाथ फेरते हुए कहा कि '' यह मेरा सच्चा भक्त था।'' फिर बाबा ने अपने ही खर्च से उसका मृत्यु-भोज ब्राह्मणों को दिए जाने की आज्ञा दी, जिसका पालन काकासाहेब दीक्षित ने किया।

।। श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

सप्ताह पारायण : चतुर्थ विश्राम

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २९।।

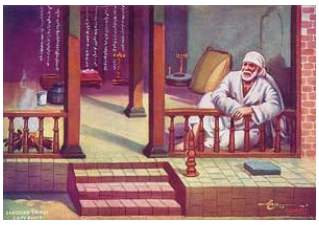

(१) मद्रासी भजनी मेला (२) तेंडुलकर (पिता व पुत्र) (३) डॉक्टर कैप्टन हाटे और (४) वामन नार्वेकर आदि की कथाएँ।

मद्रासी भजनी मेला

लगभग सन् १९१६ में एक मद्रासी भजन मंडली पवित्र काशी की तीर्थयात्रा पर निकली । उस मंडली में एक पुरुष, उनकी स्त्री, पुत्री और साली थी। अभाग्यवश, उनके नाम यहाँ नहीं दिए जा रहे हैं। मार्ग में कहीं उनको सुनने में आया कि अहमदनगर के कोपरगाँव तालुका के शिरड़ी ग्राम में श्री साईबाबा नाम के एक महान् सन्त रहते हैं, जो बहुत दयालु और पहुँचे हुए हैं। वे उदार हृदय और अहेतुक कृपासिन्धु हैं। वे प्रतिदिन अपने भक्तों को रुपया बाँटा करते हैं। यदि कोई कलाकार वहाँ जाकर अपनी कला का प्रदर्शन करता है तो उसे भी पुरस्कार मिलता है। प्रतिदिन दक्षिणा में बाबा के पास बहुत रुपए इकट्ठे हो जाया करते थे। इन रुपयों में से वे नित्य एक रुपया भक्त कोण्डाजी की तीनवर्षीय कन्या अमनी को, किसी को दो रुपए से पाँच रुपए तक, छः रुपये अमनी की माँ जमली को और दस से बीस रुपए तक और कभी-कभी पचास रुपए भी अपनी इच्छानुसार अन्य भक्तों को भी दिया करते थे। यह सुनकर मंडली शिरड़ी आकर रुकी। मंडली बहुत सुन्दर भजन और गायन किया करती थी, परन्तु उनका भीतरी ध्येय तो द्रव्योपार्जन ही था। मंडली में तीन व्यक्ति तो बड़े ही लालची थे। केवल प्रधान स्त्री का ही स्वभाव इन लोगों से सर्वथा भिन्न था। उसके हृदय में बाबा के प्रति श्रद्धा तथा आदर था। एक बार जब दोपहर की आरती हो रही थीं, तभी उस स्त्री की भक्ति और विश्वास देखकर बाबा प्रसन्न हो गये । फिर क्या था? बाबा ने उसे उसके इष्ट कें रुप में दर्शन दिए और केवल उसे ही बाबा सीतानाथ के रुप में दिखलाई दिए, जब कि अन्य उपस्थित लोगों को सदैव की भाँति ही। अपने प्रिय इष्ट का दर्शन पाकर वह द्रवित हो गई तथा उसका कंठ रुँध गया और आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। तभी प्रेमोन्मत्त हो वह ताली बजाने लगी। उसको इस प्रकार आनन्दित देख लोगों को कौतूहल तो होने लगा, परन्तु कारण किसी को भी ज्ञात न हो रहा था। दोपहर के पश्चात् उसने वह भेद अपने पति से प्रगट किया । बाबा के श्रीरामस्वरुप में उसे कैसे दर्शन हुए इत्यादि उसने सब बताया। पति ने सोचा कि मेरी स्त्री बहुत भोली और भावुक है, अतः इसे राम का दर्शन होना एक मानसिक विकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। उसने ऐसा कहकर उसकी उपेक्षा कर दी कि कहीं यह भी संभव हो सकता है कि केवल तुम्हें की बाबा राम के रुप में दिखें और अन्य लोगों को सदैव की भाँति ही। स्त्री ने कोई प्रतिवाद न किया, क्योंकि उसे राम के दर्शन जिस प्रकार उस समय हुए थे, वैसे ही अब भी हो रहे थे। उसका मन शान्त,स्थिर और संतृप्त हो चुका था।

आश्चर्यजनक दर्शन

इसी प्रकार दिन बीतते गए। एक दिन रात्रि में उसके पति को एक विचित्र स्वप्न आया। उसने देखा कि एक बड़े शहर में पुलिस ने गिरफ्तार कर डोरी से बाँधकर उसे कारावास में डाल दिया है। तत्पश्चात् ही उसने देखा कि बाबा शान्त मुद्रा में सींकचों के बाहर उसके समीप खड़े हैं। उन्हें अपने समीप खड़े देखकर वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि '' आपकी कीर्ति सुनकर ही मैं आपके श्रीचरणों में आया हूँ। फिर आपके इतने निकट होते हुए भी मेरे ऊपर यह विपत्ति क्यों आई ?

तब वे बोले कि ''तुम्हें अपने बुरे कर्मों का फल अवश्य भुगतना चाहिए। वह पुनः बोला कि '' इस जीवन में मुझे अपने ऐसे कर्म की स्मृति नहीं, जिसके कारण मुझे ये दुर्दिन देखने का अवसर मिला ।'' बाबा ने कहा कि '' यदि इस जन्म में नहीं तो गत जन्म में अवश्य कोई बुरा कर्म किया होगा ।'' तब वह कहने लगा कि '' मुझे तो अपने गत जन्म की कोई स्मृति नहीं, परन्तु यदि एक बार मान भी लूँ कि कोई बुरा कर्म हो भी गया होगा तो अपने यहाँ होते हुए तो उसे भस्म हो जाना चाहिए, जिस प्रकार सूखी घास अग्नि द्वारा शीघ्र भस्म हो जाती है।'' बाबा ने पूछा,'' क्या तुम्हारा सचमुच ऐसा दृढ़ विश्वास है?'' उसने कहा,-''हाँ।''

बाबा ने उससे अपनी आँखें बन्द करने को कहा और जब उसने आँखें बन्द कीं, उसे किसी भारी वस्तु के गिरने की आहट सुनाई दी। आँखें खोलने पर उसने अपने को कारावास से मुक्त पाया। पुलिस वाला नीचे गिरा पड़ा है तथा उसके शरीर से रक्त प्रवाहित हो रहा है, यह देखकर वह अत्यन्त भयभीत दृष्टि से बाबा की ओर देखने लगा। तब बाबा बोले कि '' बच्चू! अब तुम्हारी अच्छी तरह खबर ली जाएगी। पुलिस अधिकारी अभी आएँगे और तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे ।'' तब वह गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि '' आपकें अतिरिक्त मेरी रक्षा और कौन कर सकता है ? मुझे तो एकमात्र आपका ही सहारा है। भगवान् ! मुझे किसी प्रकार बचा लीजिए ।''

तब बाबा ने फिर उससे आँखें बन्द करने को कहा। आँखें खोलने पर उसने देखा कि वह पूर्णतः मुक्त होकर सींकचों के बाहर खड़ा है और बाबा भी उसके समीप ही खड़े हैं। तब वह बाबा के श्रीचरणों पर गिर पड़ा।

बाबा ने पूछा कि '' मुझे बताओं तो, तुम्हारे इस नमस्कार और पिछले नमस्कारों में किसी प्रकार की भिन्नता है या नहीं ? इसका उत्तर अच्छी तरह सोच कर दो ।''

वह बोला कि '' आकाश और पाताल में जो अन्तर है, वही अंतर मेरे पहले और इस नमस्कार में है। मेरे पूर्व नमस्कार तो केवल धन-प्राप्ति की आशा से ही थे, परन्तु यह नमस्कार मैंने आपको ईश्वर जानकर ही किया है। पहले मेरी धारणा ऐसी थी कि यवन होने के नाते आप हिन्दुओं का धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं।''

बाबा ने पूछा कि '' क्या तुम्हारा यवन पीरों में विश्वास नहीं?'' प्रत्युत्तर में उसने कहा- '' जी नहीं। '' तब वे फिर पूछने लगे कि ''क्या तुम्हारे घर में एक पंजा नहीं? क्या तुम ताबूत की पूजा नहीं किया करते? तुम्हारे घर में अभी भी एक काड़बीबी नामक देवी है, जिसके सामने तुम विवाह तथा अन्य धार्मिक अवसरों पर कृपा की भीख माँगा करते हो।''

अन्त में जब उसने स्वीकार कर लिया तो वे बोले कि ''इससे अधिक अब तुम्हें क्या प्रमाण चाहिए ?'' तब उनके मन में अपने गुरु श्रीरामदास के दर्शनों की इच्छा हुई। बाबा ने ज्यों ही उससे पीछे घूमने को कहा तो उसने देखा कि श्रीरामदास स्वामी उसके सामने खड़े हैं और जैसे ही वह उनके चरणों पर गिरने को तत्पर हुआ, वे तूरन्त अदृश्य हो गए।

तब वह बाबा से कहने लगा किं '' आप तो वृद्ध प्रतीत होते हैं। क्या आपको अपनी आयु विदित है?''

बाबा ने पूछा कि '' तुम क्या कहते हो कि मैं बूढ़ा हूँ? थोड़ी दूर मेरे साथ दौड़कर तो देखो ।'' ऐसा कहकर बाबा दौड़ने लगे और वह भी उनके पीछे- पीछे दौड़ने लगा। दौड़ने से पैरों द्वारा जो धूल उड़ी, उसमें बाबा लुप्त हो गए और तभी उसकी नींद भी खुल गई।

जागृत होते ही वह गम्भीरतापूर्वक इस स्वप्न पर विचार करने लगा । उसकी मानसिक प्रवृत्ति में पूर्ण परिवर्त्तन हो गया । अब उसे बाबा की महानता विदित हो चुकी थी। उसकी लोभी तथा शंकालु वृत्ति लुप्त हो गई और हृदय में बाबा के चरणों के प्रति सच्ची भक्ति उमड़ पड़ी। वह था तो एक स्वप्न मात्र ही, परन्तु उसमें जो प्रश्नोत्तर थे, वे अधिक महत्त्वपूर्ण थे। दूसरे दिन जब सब लोग मस्जिद में आरती के निमित्त एकत्रि हुए, तब बाबा ने उसे प्रसाद में लगभग दो रुपए की मिठाई और दो रुपए नगद अपने पास से देकर आशीर्वाद दिया। उसे कुछ दिन और रोककर उन्होंने आशीष देते हुए कहा कि '' अल्ला तुम्हें बहुत देगा और अब सब अच्छा ही करेगा।'' बाबा से उसे अधिक द्रव्य की प्राप्ति तो न हुई, परन्तु उनकी कृपा उसे अवश्य ही प्राप्त हो गई, जिससे उसका बहुत की कल्याण हुआ । मार्ग में उनको यथेष्ठ द्रव्य प्राप्त हुआ और उनकी यात्रा बहुत ही सफल रही। उन्हें यात्रा में कोई कष्ट या असुविधा न हुई और वे अपने घर सकुशल पहुँच गए। उन्हें बाबा के श्रीवचनों तथा आशीर्वाद और उनकी कृपा से प्राप्त उस आनन्द की सदैव स्मृति बनी रही।

इस कथा से विदित होता है कि बाबा किस प्रकार अपने भक्तों के समीप पधारकर उन्हें श्रेयस्कर मार्ग पर ले आते थे और आज भी ले आते हैं।

तेंडुलकर कुटुम्ब

बम्बई के पास बान्द्रा में एक तेंडुलकर कुटुम्ब रहता था, जो बाबा का पूरा भक्त था। श्रीयुत् रघुनाथराव तेंडुलकर ने मराठी भाषा में 'श्रीसाईनाथ भजनमाला' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें लगभग आठ सौ अभंग और पदों का समावेश तथा बाबा की लीलाओं का मधुर वर्णन है। यह बाबा के भक्तों के पढ़ने योग्य पुस्तक है। उनका ज्येष्ठ पुत्र बाबू डॉक्टरी परीक्षा में बैठने के लिये अनवरत अभ्यास कर रहा था। उसने कई ज्योतिषियों को अपनी जन्म-कुंडली दिखाई, परन्तु सभी ने बतलाया कि इस वर्ष उसके ग्रह उत्तम नहीं हैं किन्तु अगले वर्ष परीक्षा में बैठने से उसे अवश्य सफलता प्राप्त होगी। इससे उसे बड़ी निराशा हुई और वह अशान्त हो गया। थोड़े दिनों के पश्चात् उसकी माँ शिरड़ी गई और उसने वहाँ बाबा के दर्शन किए । अन्य बातों के साथ उसने अपने पुत्र की निराशा तथा अशान्ति की बात भी बाबा से कही। उनके पुत्र को कुछ दिनों के पश्चात् ही परीक्षा में बैठना था। बाबा कहने लगे कि '' अपने पुत्र से कहो कि मुझ पर विश्वास रखे। सब भविष्यकथन तथा ज्योतिषियों द्वारा बनाई कुंडलियों को एक कोने में फेंक दे और अपना अभ्यास-क्रम चालू रख शान्तचित्त से परीक्षा में बैठे। वह अवश्य ही इस वर्ष उत्तीर्ण हो जाएगा। उससे कहना कि निराश होने की कोई बात नहीं है।'' माँ ने घर आकर बाबा का सन्देश पुत्र को सुना दिया । उसने घोर परिश्रम किया और परीक्षा में बैठ गया । सब परचों के जवाब बहुत अच्छे लिखे थे। परन्तु फिर भी संशयग्रस्त होकर उसने सोचा कि सम्भव है कि उत्तीर्ण होने योग्य अंक मुझे प्राप्त न हो सकें । इसलिए उसने मौखिक परीक्षा में बैठने का विचार त्याग दिया । परीक्षक तो उसके पीछे ही लगा था। उसने एक विद्यार्थी द्वारा सूचना भेजी कि उसे लिखित परीक्षा में तो उत्तीर्ण होने लायक अंक प्राप्त हैं। अब उसे मौखिक परीक्षा में अवश्य ही बैठना चाहिए । इस प्रकार प्रोत्साहन पाकर वह उसमें भी बैठ गया तथा दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गया। उस वर्ष उसकी ग्रह-दशा विपरीत होते हुए भी बाबा की कृपा से उसने सफलता पाई। यहाँ केवल इतनी ही बात ध्यान देने योग्य है कि **कष्ट और संशय की उत्पत्ति अन्त में दृढ़ विश्वास में परिणत हो जाती है। जैसी भी हो, परीक्षा तो होती ही है, परन्तु यदि हम बाबा पद दृढ़ विश्वास और श्रद्धा रखकर प्रयन्त कर ते रहें तो हमें सफलता अवश्य ही मिलेगी।**

इसी बालक के पिता रघुनाथराव बम्बई की एक विदेशी व्यवसायी फर्म में नौकरी करते थे। वे बहुत वृद्ध हो चुके थे और अपना कार्य सुचारुरुप से नहीं कर सकते थे। इसलिए वे अब छुट्टी लेकर विश्राम करना चाहते थे। छुट्टी लेने पर भी उनके शारीरिक स्वास्थ्य में कोई विशेष परिवर्त्तन न हुआ। अब यह आवश्यक था कि सेवानिवृत्ति की पूर्वकालिक छुट्टी ली जाए। एक वृद्ध और विश्वासपात्र नौकर होने के नाते प्रधान मैनेजर ने उन्हें पेन्शन देकर सेवा-निवृत्त करने का निर्णय किया। पेन्शन कितनी दी जाए, यह पश्न विचाराधीन था। उन्हें १५० रुपये मासिक वेतन मिलता था। इस हिसाब से पेन्शन हुई ७५ रुपये, जो कि उनके कुटुम्ब के निर्वाह हेतु अपर्याप्त थी। इसलिए वे बड़े चिन्तित थे। निर्णय होने के पन्द्रह दिन पूर्व ही बाबा ने श्रीमती तेंडुलकर को स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि '' मेरी इच्छा है कि पेन्शन १०० रुपये दी जाए। क्या तुम्हें इससे सन्तोष होगा?''

श्रीमती तेंडुलकर ने कहा कि '' बाबा मुझ दासी से आप क्या पूछते हैं? हमें तो आपके श्री-चरणों में पूर्ण विश्वास है।''

यद्यपि बाबा ने १०० रुपये कहे थे, परन्तु उसे विशष प्रकरण समझकर १० रुपये अधिक अर्थात् ११० रुपये पेन्शन निश्चित हुई । बाबा अपने भक्तों के लिए कितना अपरिमित स्नेह और कितनी चिन्ता रखते थे?

कैप्टन हाटे

बीकानेर के निवासी कैप्टन हाटे बाबा के परम भक्त थे। एक बार स्वप्न में बाबा ने उनसे पूछा कि '' क्या तुम्हें मेरी विस्मृति हो गई?'' श्री. हाटे ने उनके श्रीचरणों से लिपट कर कहा कि '' यदि बालक अपनी माँ को भूल जाए तो क्या वह जीवित रह सकता है?''

इतना कहकर श्री. हाटे शीघ्र बगीचे में जाकर कुछ वलपपड़ी (सेम) तोड़ लाए और एक थाली में सीधा (सूखी भिक्षा) तथा दक्षिणा रखकर बाबा को भेंट करने आए। उसी समय उनकी आँखें खुल गई और उन्हें ऐसा भान हुआ कि यह तो एक स्वप्न था। फिर वे सब वस्तुएँ , जो उन्होंने स्वप्न में देखी थीं, बाबा के पास शिरड़ी भेजने का निश्चय कर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् वे ग्वालियर आए और वहाँ से अपने एक मित्र को बारह रुपयों का मनीऑर्डर भेजकर पत्र में लिख भेजा कि दो रुपयों में सीधा की सामग्री और वलपपड़ी (सेम) आदि मोल लेकर तथा दस रुपये दक्षिणास्वरुप साथ में रखकर मेरी ओर से बाबा को भेंट देना। उनके मित्र ने शिरड़ी आकर सब वस्तुएँ तो संग्रह कर लीं, परन्तु वलपपड़ी प्राप्त करने में उन्हें अत्यन्त कठिनाई हुई। थोड़ी देर के पश्चात् ही उन्होंने एक स्त्री को सिर पर टोकरी रखे सामने से आते देखा। उन्हें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि उस टोकरी में वलपपड़ी के अतिरिक्त कुछ भी न था। तब उन्होंने वलपपड़ी खरीद कर सब एकत्रित वस्तुएँ लेकर मस्जिद में जाकर श्री. हाटे की ओर से बाबा को भेंट कर दी। दूसरे दिन श्री. निमोणकर ने उसका नैवेद्य (चावल और वलपपड़ी की सब्जी) तैयार कर बाबा को भोजन कराया। सब लोगों को बड़ा विस्मय हुआ कि बाबा ने भोजन में केवल वलपपड़ी ही खाई और अन्य वस्तुओं को स्पर्श तक न किया। उनके मित्र द्वारा जब इस समाचार का पता कैप्टन हाटे को चला तो वे गद्‌गद् हो उठे और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

पवित्र रुपया

एक अन्य अवसर पर कैप्टन हाटे ने विचार किया कि बाबा के पवित्र करकमलों द्वारा स्पर्शित एक रुपया लाकर अपने घर में अवश्य ही रखना चाहिए। अचानक ही उनकी भेंट अपने एक मित्र से हो गई, जो शिरड़ी जा रहे थे। उनके हाथ ही श्री. हाटे ने एक रुपया भेज दिया। शिरड़ी पहुँचने पर बाबा को यथायोग्य प्रणाम करने के पश्चात् उसने दक्षिणा भेंट की, जिसे उन्होंने तुरन्त ही अपनी जेब में रख लिया । तत्पश्चात् ही उसने कैप्टन हाटे का रुपया भी अर्पण किया, जिसे वे हाथ में लेकर गौर से निहारने लगे । उन्होंने उसका अंकित चित्र ऊपर की ओर कर अँगूठे पर रख खनखनाया और अपने हाथ में लेकर देखने लगे। फिर वे उनके मित्र से कहने लगे कि उदी सहित यह रुपया अपने मित्र को लौटा देना। मुझे उनसे कुछ नहीं चाहिए। उनसे कहना कि वे आनन्दपूर्वक रहें । मित्र ने ग्वालियर आकर वह रुपया हाटे को देकर वहाँ जो कुछ हुआ था, वह सब उन्हें सुनाया, जिसे सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अनुभव किया कि बाबा सदैव उत्तम विचारों को प्रोत्साहित करते हैं। उनकी मनोकामना बाबा ने पूर्ण कर दी।

श्री. वामन नार्वेकर

पाठकगण अब एक भिन्न कथा श्रवण करें। एक महाशय, जिनका नाम वामन नार्वेकर था, उनकी साई-चरणों में प्रगाढ़ प्रीति थी। एक बार वे एक ऐसी मुद्रा लाए, जिसकी एक ओर राम, लक्ष्मण और सीता तथा दूसरी ओर करबद्ध मुद्रा में मारुति का चित्र अंकित था। उन्होंने यह मुद्रा बाबा को इस अभिप्राय से भेंट की कि वे इसे अपने करस्पर्श से पवित्र कर उदी सहित लौटा दें । परन्तु उन्होंने उसे तुरन्त अपनी जेब में रख लिया। शामा ने वामनराव की इच्छा बताकर उनसे मुद्रा वापस करने का अनुरोध किया। तब वे वामनराव के सामने ही कहने लगे कि '' यह भला उनको क्यों लौटाई जाय? इसे तो हमें अपने पास ही रखना चाहिए। यदि वे इसके बदले में पच्चीस रुपया देना स्वीकार करें तो मैं इसे लौटा दूँगा।'' वह मुद्रा वापस पाने के हेतु श्री. वामनराव ने पच्चीस रुपये एकत्रित कर उन्हें भेंट किए। तब बाबा कहने लगे कि ''इस मुद्रा का मूल्य तो पच्चीस रुपयों से कहीं अधिक हैं। शामा! तुम इसे अपने भंडार में जमा करके अपने देवालय में प्रतिष्ठित कर इसका नित्य पूजन करो।'' किसी का साहस न था कि वे यह पूछ तो लें कि उन्होंने ऐसी नीति क्यों अपनाई ? यह तो केवल बाबा ही जानें कि किसके लिये कब और क्या उपयुक्त है?

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय ३० ।।

शिरड़ी को खींचे गए भक्त
वणी के काका वैद्य (२) खुशालचंद (३) बम्बई के रामलाल पंजाबी ।

इस अध्याय में बतलाया गया है कि तीन अन्य भक्त किस प्रकार शिरड़ी की ओर खींचे गये।

प्राक्कथन

जो बिना किसी कारण भक्तों पर स्नेह करने वाले दया के सागर हैं तथा निर्गुण होकर भी भक्तों के प्रेमवश ही जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक मानव शरीर धारण किया; जो ऐसे भक्त-वत्सल हैं कि जिनके दर्शन मात्र से ही भवसागर के भय और समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं; ऐसे श्री साईनाथ महाराज को हम क्यों न नमन करें ? भक्तों को आत्मदर्शन कराना ही सन्तों का प्रधान कार्य है। श्री साई, जो सन्त शिरोमणि हैं, उनका तो मुख्य ध्येय ही यही है। जो उनके श्री-चरणों की शरण में जाते हैं, उनके समस्त पाप नष्ट होकर निश्चित ही दिन-प्रतिदिन उनकी प्रगति होती है। उनके श्री-चरणों का स्मरण कर पवित्र स्थानों से भक्तगण शिरडी आते और उनके समीप बैठकर श्लोक पढ़कर गायत्री-मंत्र का जप किया करते थे। परन्तु जो निर्बल तथा सर्व प्रकार से दीन-हीन हैं और जो यह भी नहीं जानते कि भक्ति किसे कहते है, उनका तो केवल इतना ही विश्वास है कि अन्य सब लोग उन्हें असहाय छोड़कर उपेक्षा भले ही कर दें, परन्तु अनाथों के नाथ और प्रभु श्री साई मेरा कभी परित्याग न करेंगे। जिन पर वे कृपा करें, उन्हें प्रचण्ड शक्ति, नित्यानित्य में विवेक तथा ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है।

वे अपने भक्तों की इच्छाएँ पूर्णतः जानकर उन्हें पूर्ण किया करते हैं, इसीलिए भक्तों को मनोवांछित फल की प्राप्ति हो जाया करती है और वे सदा कृतज्ञ बने रहते हैं। हम उन्हें साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर हमें समस्त कष्टों से बचा लें । जो विपत्ति-ग्रस्त प्राणी इस प्रकार श्री साई से प्रार्थना करता है, उनकी कृपा से उसे पूर्ण शान्ति तथा सुख-समृद्धि प्राप्त होती है।

श्री हेमाड़पंत कहते है कि '' हे मेरे प्यारे साई! तुम तो दया के सागर हो। यह तो तुम्हारी ही दया का फल है, जो आज यह , 'साई सच्चरित्र ' भक्तों के समक्ष प्रस्तुत है, अन्यथा मुझमें इतनी योग्यता कहाँ थी, जो ऐसा कठिन कार्य करने का दुस्साहस भी कर सकता ? जब पूर्ण उत्तरदायित्व साई ने अपने ऊपर ही ले लिया तो हेमाड़पंत को तिलमात्र भी भार प्रतीत न हुआ और न ही इसकी उन्हें चिन्ता ही हुई। श्रीसाई ने इस ग्रन्थ के रुप में उनकी सेवा स्वीकार कर ली। यह केवल उनके पूर्वजन्म के शुभ संस्कारों के कारण ही सम्भव हुआ, जिसके लिए वे अपने को भाग्यशाली और कृतार्थ समझते हैं।

नीचे लिखी कथा कपोलकल्पित नहीं, वरन् विशुद्ध अमृततुल्य है। इसे जो हृदयंगम करेगा, उसे श्री साई की महानता और सर्वव्यापकता विदित हो जाएगी, परन्तु जो वादविवाद और आलोचना करना चाहते हैं, उन्हें इन इथाओं की ओर ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं है। यहाँ तर्क की नहीं, वरन् प्रगाढ़ प्रेम और भक्ति की अत्यन्त अपेक्षा है। विद्वान् भक्त तथा श्रध्दालु जन अथवा जो अपने को साई-पद-सेवक समझते हैं, उन्हें ही ये कथाएँ रुचिकर तथा शिक्षाप्रद प्रतीत होंगी; अन्य लोगों के लिए तो वे निरी कपोल-कल्पनाएँ ही हैं। श्रीसाई के अंतरंग भक्तों को श्रीसाईलीलाएँ कल्पतरु के सदृश हैं। श्रीसाई- लीलारुपी अमृतपान करने से अज्ञानी जीवों को ज्ञान गृहस्थाश्रमियों को सन्तोष तथा मुमुक्षुओं को एक उच्च साधन प्राप्त होता है। अब हम इस अध्याय की मूल कथा पर आते हैं।

काका जी वैद्य

नासिक जिले के वणी ग्राम में काका जी वैद्य नाम के एक व्यक्ति रहते थे। वे श्रीसप्तशृंगी देवी के मुख्य पुजारी थे। एक बार वे विपत्तियों में कुछ इस प्रकार ग्रसित हुए कि उनके चित्त की शांति भंग हो गई और वे बिलकुल निराश हो उठे । एक दिन अति व्यथित होकर देवी के मन्दिर में जाकर अन्तःकरण से वे प्रार्थना करने लगे कि '' हे देवि! हे दयामयी! मुझे कष्टों से शीघ्र मुक्त करो।'' उनकी प्रार्थना से देवी प्रसन्न हो गईं और उसी रात्रि को उन्हें स्वप्न में बोलीं कि ''तू बाबा के पास जा, वहाँ तेरा मन शान्त और स्थिर हो जायेगा ।'' बाबा का परिचय जानने को काका जी बड़े उत्सुक थे, परन्तु देवी से प्रश्न करने के पूर्व ही उनकी निद्रा भंग हो गई । वे विचारने लगे कि ऐसे ये कौन से बाबा हैं, जिनकी ओर देवी ने मुझे संकेत किया है। कुछ देर विचार करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सम्भव है कि वे त्र्यंबकेश्वर बाबा (शिव) ही हों । इसलिए वे पवित्र तीर्थ त्र्यंबक (नासिक) को गए और वहाँ रहकर दस दिन व्यतीत किए। वे प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त हो, रुद्र मंत्र का जप कर, साथ ही साथ अभिषेक व अन्य धार्मिक कृत्य भी करने लगे । परन्तु उनका मन पूर्ववत् ही अशान्त बना रहा। तब फिर अपने घर लौटकर वे अति करुण स्वर में देवी की स्तुति करने लगे । उसी रात्रि में देवी ने उन्हें पुनः स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि '' तू व्यर्थ ही त्र्यम्बकेश्वर क्यों गया ? बाबा से तो मेरा अभिप्राय था शिरड़ी के श्रीसाई समर्थ से।'' अब काका जी के समक्ष मुख्य प्रश्न यह उपस्थित हो गया कि वे कैसे और कब शिरड़ी जाकर बाबा के श्री दर्शन का लाभ उठाए'' । **यथार्थ में यदि कोई व्यक्ति , किसी सन्त के दर्शन को आतुर हो तो केवल सन्त ही नहीं, भगवान् भी उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं। वस्तुतः यदि पूछा जाए तो सन्त और अनन्त एक ही हैं और उनमें कोई भिन्नता नहीं।**

यदि कोई कहे कि मैं स्वतः ही अमुक सन्त के दर्शन को जाऊँगा तो इसे केवल दम्भ के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? **सन्त की इच्छा के विरुद्ध उनके समीप कौन जाकर दर्शन ले सकता है?** उनकी सत्ता के बिना वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। **जितनी तीव्र उत्कंठा संत दर्शन की होगी, तदनुसार ही उसकी भक्ति और विश्वास में वृद्धि होती जाएगी और उतनी ही शीघ्रता से उनकी मनोकामना भी सफलतापूर्वक पूर्ण होगी।** जो निमंत्रण देता है, वह आदर आतिथ्य का प्रबन्ध भी करता है। काका जी के सम्बन्ध में सचमुच यही हुआ।

शामा की मान्यता

जब काकाजी शिरड़ी यात्रा करने का विचार कर रहे थे, उसी समय उनके यहाँ एक अतिथि आया (जो कि शामा के अतिरिक्त और कोई न था) । शामा बाबा के अन्तरंग भक्तों में से थे। वे ठीक इसी समय वणी में क्यों और कैसे आ पहुँचे, अब हम इस पर दृष्टि डालें । बाल्यावस्था में वे एक बार बहुत बीमार पड़ गए थे। उनकी माता ने अपनी कुलदेवी सप्तशृंगी से प्रार्थना की कि यदि मेरा पुत्र नीरोग हो जाए तो मैं उसे तुम्हारे चरणों पर लाकर डालूँगी। कुछ वर्षों के पश्चात् ही उनकी माता के स्तन में दाद हो गई। तब उन्होंने पुनः देवी से प्रार्थना की कि यदि मैं रोगमुक्त हो जाऊँ तो मैं तुम्हें चाँदी के दो स्तन चढाऊँगी। पर ये दोनों वचन अधूरे ही रहे। परन्तु जब वे मृत्युशैया पर पड़ी थीं तो उन्होंने अपने पुत्र शामा को समीप बुलाकर उन दोनों वचनों की स्मृति दिलाई तथा उन्हें पूर्ण करने का आश्वासन पाकर प्राण त्याग दिए। कुछ दिनों के पश्चात् वे अपनी यह प्रतिज्ञा भूल गए और इसे भूले पूरे तीस वर्ष व्यतीत हो गए। तभी एक प्रसिद्ध ज्योतिषी शिरड़ी आए और वहाँ लगभग एक मास ठहरे। श्रीमान् बूटीसाहेब और अन्य लोगों को बतलाए उनके सभी भविष्य प्रायः सही निकले, जिनसे सब को पूर्ण सन्तोष था। शामा के लघुभ्राता बापाजी ने भी उनसे कुछ प्रश्न पूछे। तब ज्योतिषी ने उन्हें बताया कि तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता ने अपनी माता को मृत्युशैया पर जो वचन दिए थे, उनके अब तक पूर्ण न किए जाने के कारण देवी असन्तुष्ट होकर उन्हें कष्ट पहुँचा रही हैं। ज्योतिषी की बात सुनकर शामा को उन अपूर्ण वचनों की स्मृति हो आई। अब और विलम्ब करना खतरनाक समझकर उन्होंने सुनार को बुलाकर चाँदी के दो स्तन शीघ्र तैयार कराए और उन्हें मस्जिद में ले जाकर बाबा के समक्ष रख दिया तथा प्रणाम कर उन्हें स्वीकार कर वचनमुक्त करने की प्रार्थना की। शामा ने कहा कि मेरे लिए तो सप्तशृंगी देवी आप ही हैं, परन्तु बाबा ने साग्रह कहा कि तुम इन्हें स्वयं ले जाकर देवी के चरणों में अर्पित करो। बाबा की आज्ञा व उदी लेकर उन्होंने वणी को प्रस्थान कर दिया। पुजारी का घर पूछते -पूछते वे काका जी के पास जा पहुँचे । काका जी इस समय बाबा के दर्शनों को बड़े उत्सुक थे और ठीक ऐसे ही मौके पर शामा भी वहाँ पहुँच गए। वह संयोग भी कैसा विचित्र था ? काकाजी ने आगन्तुक से उनका परिचय प्राप्त कर पूछा कि आप कहाँ से पधार रहे हैं? जब उन्होंने सुना कि वे शिरड़ी से ही आ रहे हैं तो वे एकदम प्रेमोन्मत्त हो शामा से लिपट गए और फिर दोनों का श्री साईलीलाओं पर वार्त्तालाप आरम्भ हो गया। अपने वचन संबंधी कृत्यों को पूर्ण कर वे काकाजी के साथ शिरड़ी लौट आए। काकाजी मस्जिद पहुँच कर बाबा के श्रीचरणों से जा लिपटे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओ की धारा बहने लगी और उनका चित्त स्थिर हो गया। देवी के दृष्टांतानुसार जैसे ही उन्होंने बाबा के

दर्शन किए, उनके मन की अशांति तुरन्त नष्ट हो गई और वे परम शीतलता का अनुभव करने लगे। वे विचार करने लगे कि कैसी अद्‌भुत शक्ति है कि बिना कोई सम्भाषण या पश्नोत्तर किए अथवा आशीष पाए, दर्शन मात्र से ही अपार प्रसन्नता हो रही है! सचमुच में दर्शन का महत्त्व तो इसे ही कहते हैं । उनके तृषित नेत्र साई-चरणों पर अटक गए और वे अपनी जिह्वा से एक शब्द भी न बोल सके। बाबा की अनन्य लीलाएँ सुनकर उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे पूर्णतः बाबा के शरणागत हो गए । सब चिन्ताओं और कष्टों को भूलकर वे परम आनन्दित हुए। उन्होंने वहाँ सुखपूर्वक बारह दिन व्यतीत किए और फिर बाबा की आज्ञा, आशीर्वाद तथा उदी प्राप्त कर अपने घर लौट गए।

खुशालचन्द (राहातानिवासी)

ऐसा कहते हैं कि प्रातः बेला में जो स्वप्न आता है, वह बहुधा जागृतावस्था में सत्य ही निकलता है। ठीक है, ऐसा ही होता होगा। परन्तु बाबा के सम्बध में समय का ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था । ऐसा ही एक उदाहरण प्रस्तुत हैः - बाबा ने एक दिन तृतीय प्रहर काकासाहेब को ताँगा लेकर राहाता से खुशालचन्द को लाने के लिए भेजा, क्योंकि खुशालचन्द से उनकी कई दिनों से भेंट न हुई थी। राहाता पहुँच कर काकासाहेब ने यह सन्देश उन्हें सुना दिया। यह सन्देश सुनकर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ और वे कहने लगे कि दोपहर को भोजन के उपरान्त थोड़ी देर को मुझे झपकी सी आ गई थी, तभी बाबा स्वप्न में आये और मुझे शीघ्र ही शिरड़ी आने को कहा। परन्तु घोड़ का उचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण मैंने अपने पुत्र को यह सूचना देने के लिए ही उनके पास भेजा था। जब वह गाँव की सीमा तक ही पहुँचा था, तभी आप सामने से ताँगे में आते दिखे।

वे दोनों उस ताँगे में बैठकर शिरड़ी पहुँचे तथा बाबा से भेंटकर उन्हें बडी प्रसन्नता हुई । बाबा की यह लीला देख खुशालचन्द गद्‌गद् हो गए।

बम्बई के रामलाल पंजाबी

बम्बई के एक पंजाबी ब्राह्मण श्री. रामलाल को बाबा ने स्वप्न में एक महन्त के वेश में दर्शन देकर शिरड़ी आने को कहा। उन्हें नाम ग्राम का कुछ भी पता चल न रहा था। उनको श्री दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा तो थी, परन्तु पता-ठिकाना ज्ञात न होने के कारण वे बड़े असमंजस में पड़े हुए थे। जो आमंत्रण देता है, वही आने का प्रबन्ध भी करता है और अन्त में हुआ भी वैसा ही। उसी दिन सन्ध्या समय जब वे सड़क पर टहल रहे थे तो उन्होंने एक दूकान पर बाबा का चित्र टँगा देखा। स्वप्न में उन्हें जिस आकृति वाले महन्त के दर्शन हुए थे, वे इस चित्र के ही सदृश थे। पूछताछ करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह चित्र शिरड़ी के श्री साई समर्थ का है और तब उन्होंने शीघ्र ही शिरडी को प्रस्थान कर दिया तथा जीवनपर्यन्त शिरड़ी में ही निवास किया।

इस प्रकार बाबा ने अपने भक्तों को अपने दर्शन के लिए शिरड़ी में बुलाया और उनकी लौकिक तथा पारलौकिक समस्त इच्छाएँ पूर्ण की।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु।।